सिद्धयोग

2017

संस्थापक : योगयोगेश्वर
अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज

योग सिद्धान्त एवं आध्यात्म का
प्रतिपादक मासिक

एक प्रति : रू. 20
त्रिवार्षिक : रू. 360

वर्ष : 49; अंक: 10
जनवरी 2017

प्रकाशन तिथि : 01.01.2017

श्री सिद्धगुफा प्रकाशन सवाँई-283202 (आगरा) उ.प्र.

अमृतकण

न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्र तारकम्
नेमा विद्युतो भाति कुतोऽयमग्निः
तमेव भान्तुमनु भाति सर्वम्
तस्य भासा सर्वमिदं विभाति

(श्वेताश्वतर)

वहाँ सद् गुरु तत्व न सूर्य–प्रकाशित होता है। न चन्द्रमा और तारे प्रकाशित होते है। न बिजली चमकती है। फिर अग्नि ही कैसे प्रकाशित हो सकती है। ये सब आत्मा के प्रकाशित होने पर ही प्रकाशमान हो रहे हैं। उसी के प्रकाश से सब प्रकाशित है।

सर्वभूतस्थमात्मानं सर्व भूतानि चात्मनि
ईक्षते योग युक्तात्मा सर्वत्र सम दर्शनः।

(गीता)

सर्वत्र समदर्शन वाला योगयुक्त योगी सब भूतों में अपने को तथा अपने में सब भूतों की अवस्थित देखता है।

सिद्धयोग

योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक मासिक–पत्र

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवांई (एत्मादपुर) आगरा

वर्ष 49
अंक 10

ध्यायं ध्यायं यदिह परमं ब्रह्म शुद्ध स्वभावम्
मर्त्योमृत्योर्मुख विवरतो, मुक्तिमाप्नोति सद्यः।
तत्प्राप्यर्थान् बहुतर विषदान् योगशास्त्रोपदेशान्
कल्याणां भवतु महतां सिद्धये सिद्धयोगः।।

जनवरी
2016

असारः खलु संसारो

असारः खलु संसारो दुखःरूपी विमोहकः।
सुतः कस्य धनं कस्य स्नेहवाञ्ज्वलतेऽनिशम्।।
न चेन्द्रस्य सुखं किंचिन्त सुखं चक्रवर्तिनः।
सुखमस्ति विरक्तस्य मुनिरेकान्तजीविनः।।

अर्थात्

यह संसार असार है। यह अत्यन्त दुखःरूप और मोह में डालने वाला है। पुत्र किसका ?धन किसका ? स्नेहवान पुरूष रात–दिन दीपक के समान जलता रहता है। इन्द्र को और चक्रवर्ती राजा को कुछ भी सुख नहीं है। सुख है तो केवल एकान्तजीवी विरक्त मुनि को।

SIDDHYOG
HINDI MONTHLY

संस्थापक :

योग–योगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज

सम्पादक : आचार्य (डा.) दासलाल ब्रह्मचारी

संयुक्त सम्पादक : डॉ. विजय सिंह

प्रबन्ध सम्पादक : समस्त योग प्रचार मण्डलों के अध्यक्ष एवं गुरु भाई–बहिन

इस अंक में ...

1. विशेष लेख – योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहनजी महाराज 3
2. सम्पादकीय 7
3. श्री मद्भागवत में योग–परिचर्चा– डॉ. विजय सिंह 9
4. आध्यात्मिक प्रगति– प्रो. ऋषिराम शर्मा 12
5. जब शिव गणों ने त्रिशूल चलाऐं– जगदीश राए बंसल 15
6. ओंकार की उपासना– दिनेश चन्द्र शर्मा 18
7. तुम्हारी जय होवे भगवान– श्रीमती शारदा सिसौदिया 21
8. योग–आसन 22
9. रोग भगाओ,अज्ञान मिटाओ और श्री गणेश जी– प्रो. मनमोहन कृष्ण 23
10. नववर्ष 2017 के शुभावतरण पर त्रिभाषा–रचित– द्वारका प्रसाद शर्मा 26
11. पं. राधेश्याम शर्मा जी पर सद्गुरुदेव की कृपायें– अशोक शर्मा 28
12. श्री सत्गुरुदेव की कृपा– श्याम मनोहर श्रीवास्तव 32
13. खेल–खेल में बात–बात में शक्ति पात– जगमन्दर दास 33
14. ध्यान द्वारा यथार्थ स्थिति का बोध 35
15. भगवत्तत्त्व – एक विवेश्चन– रवीन्द्र नाथ 38

एक प्रति	: रु. 20.00
वार्षिक शुल्क	: रु. 180.00
द्विवार्षिक	: रु. 360.00
आजीवन	: रु.1000.00

विशेष लेख

योगासन एवम् ऊर्ध्वरेतसता

योग योगेश्वर अनन्त श्री चन्द्रमोहन जी महाराज

षटचक्रों के अन्दर मणिपूरक नामक नाभि का चक्र है। मणिपूरक चक्र का स्थान नाभिमण्डल है। नाभिमण्डल ही वीर्याशय यानी वीर्य का स्थान है। मनुष्य के मन में जब किसी प्रकार की काम–वासना का उदय होता है तो कामाग्नि की ऊष्णता से वीर्य सारे शरीर से आकर्षित होकर स्खलन की ओर जाता है। आयुर्वेद के परमाचार्य श्री वागभट्ट ने वीर्य को वपुसार, जीवनाशय, गर्भबीज आदि नामों से उद्घोषित किया है। जैसे:–

शुक्रं सौम्यं सितं स्निग्धं बलं पुष्टिकरं स्मृतम्।
गर्भ बीजं वपुः सारो जीवनाश्रय उत्तमः।।

अतः इसका सारे शरीर में व्यापक रहना जीवधारियों के लिए बहुत ही आवश्यक है। जो व्यक्ति किसी भी प्रकार का व्यायाम नहीं करते हैं, खट्टे–मीठे पदार्थ खाते रहते हैं, उनके मन में काम–वासना बढ़ती रहा करती है। खाली बैठे रहने से मन में कुभावनायें आती हैं और शनैः शनैः कुकर्म–चेष्टायें बढ़ने लगती हैं, जिससे मनुष्य उन्नति के लिए प्राप्त हुए अपने पवित्र जीवन को पतन की ओर ले जाने का कारण बन जाता है। इसलिए वीर्य को ऊर्ध्वरेतस बनाने के लिए साधक को पहले ऐसा प्रयत्न कर लेना चाहिए कि वपुसार जीवनाश्रय वीर्य को सारे शरीर में व्यापक कर डाले। वीर्य को शरीर में व्यापक करने के लिए यह बहुत ही आवश्यक है कि मनुष्य व्यायाम की आदत डाले। व्यायाम करने के जितने प्रकार आज भारत व दूसरे देशों में प्रचलित हैं वे सब मनुष्यकृत होने के नाते अधिक लाभदायक नहीं हैं। ऐसे सभी व्यायाम शारीरिक जड़ता के दाता हैं। ये वीर्य को शरीर में व्यापक तो बनाते हैं किन्तु उसका प्रभाव सभी अंगों पर समान रूप से नहीं पड़ता। स्नायु कहीं–कहीं तो बहुत ही दृढ़ हो जाते हैं जिससे सारे शरीर में रस व रक्त का समान रूप से वहन नहीं हो पाता। जो व्यायाम हमारे पूर्वज योगाचार्यों ने अपने ग्रंथ में लिखे हैं वे सभी उनकी ऋतम्भरा प्रज्ञा की उत्तम देन हैं और ये सभी व्यायाम स्नायु–मण्डल को कोमल, रस व रक्त का ठीक तरह से वहन करने वाले बनाते हैं एवं मन की एकाग्रता के दाता हैं, अतः शरीर को नीरोग, हल्का, फुर्तीला ओज–तेज प्रधान एवं वीर्य को शरीर को व्यापक बनाने के लिए योगासन बहुत उपयोगी है। जो लोग किसी योग शिक्षण केन्द्र में जाकर नियमानुवर्तिता से योगासनों का अभ्यास करते हैं उनका वीर्य शरीर में व्यापक हो जाता है। कामोद्दीपक भावनायें स्वतः ही शान्त होने लगती हैं तथा मन आत्म–चिन्तन की ओर बढ़ने लगता है। योगासनों का व्यायाम सभी प्रकार से उत्तम है, किन्तु वीर्य को शरीर में व्यापक बनाये रखने के लिए उदर–सम्बन्धी आसनों का अभ्यास बहुत ही आवश्यक हो जाता है। जैसे:– उत्तानपादासन, पवनमुक्तासन, नावासन,

नाभ्यासन, धनुरासन, शलभासन, मत्स्यासन, मत्स्येन्द्रासन आदि। ये सभी आसन पेट से सम्बन्ध रखने वाले हैं। योग शिक्षण केन्द्रों में सभी आसन नियमानुसार कराये जाते हैं। अभ्यासी लोग पहले खड़े होने के आसन करते हैं उसके बाद बैठने–लेटने के आदि क्रमानुसार करते हैं।

उपरोक्त विधि के अनुसार वीर्य शरीर में व्यापक तो हो ही जायेगा, किन्तु ऊर्ध्वरेतसता प्राप्त करने के लिए कुछ खास–खास अभ्यास हैं जिनका दिग्दर्शन हम निम्नलिखित पंक्तियों में कर रहे हैं।

हमारे योगाचार्यों ने 'सिद्धासन' को सर्व सिद्धियों का दाता बतलाया है। 'सिद्धासन' की एक विशेषता यह है कि उसके करने से मनुष्य स्वाभाविक ही संयतेन्द्रिय बन जाता है क्योंकि सिद्धासन लगाने से वीर्यवाहिनी नाड़ी संकुचित हो जाती है और उस नाड़ी के दब जाने से वीर्य का अधोवेग रूककर ऊर्ध्ववेग बन जाता है। 'सिद्धासन' का प्रकार योगाचार्य भगवान सदाशिव ने शिवसंहिता में इस प्रकार बतलाया है:–

योनिं संपीड्य यत्नेन पाद मूलेन साधकः।
मेढ्रोपरि पादमूलं विन्यसेत योगवित्सदा।।
ऊर्ध्व निरीक्ष्य भ्रमूध्यं निश्चलः संयतेन्द्रियः।
विशेषोऽवक्राश्च रहस्युद्वेगवर्जितः।।
एतत्सिद्धासनं ज्ञेयं सिद्धानां सिद्धिदायकम्।

अर्थात्– अपने बायें पैर की एड़ी को अण्डकोषों के नीचे योनिस्थान में (जिसको सीवनी कहते हैं) ले जाकर दृढ़ता के साथ जमा दो। पीछे गुदाद्वार के नीचे कोई कपड़ा या कपड़े की साधारण सी गद्दी रख दो जिससे लिंगनाल को दबाने में वह गद्दी सहायक हो जाये। इस प्रकार बायें पैर की एड़ी को योनिस्थान में दृढ़ता से जमाकर दाहिने पैर की एड़ी को लिंगनाल के ऊपर जमाकर रखो। दोनों पैरों के टखने परस्पर मिले हुए हों। एक पैर लिंगेन्द्रिय के नीचे योनिस्थान में हो और दूसरा लिंगेन्द्रिय के ऊपर जमा हुआ हो। इस विधि से बैठ जाओ। अपने मेरूदण्ड को सीधा रखो। दोनों हाथों को तनाव के साथ घुटनों पर रखो एवं दृष्टि को भ्रूमध्य में ले जाओ, दृष्टि थोड़ी सी झुकी हुई हो। मन में कोई भी उद्वेग न हो। इसको योगाचार्यों ने सिद्धासन कहा है।

जो लोग केवलमात्र सिद्धासन का अभ्यास करते रहते हैं उनके भी मनोविकार शांत हो जाते हैं और वीर्य की अधोगति रूक करके वेग ऊपर की ओर बढ़ने लगता है।

इसके साथ एक विशेष प्रकार का प्राणायाम करो। अपने प्राणवायु को वेग के साथ बाहर निकाल दो। उड्डियान बंध के साथ आधार चक्र को ऊपर की ओर खींचो और प्राणवायु को रोक दो। आधार चक्र खींचे रहो। अपने मन में धारणा करो कि मैं अपने वीर्य को ऊपर की ओर खींच रहा हूँ। अनुभवी सन्तों ने इस प्राणायाम में लिंगेन्द्रिय को ऊपर की ओर खींचने की भी विधि लिखी है, किन्तु नाभिमण्डल से नीचे की नाड़ियों को अपने हाथ की हथेली से तनाव देकर रखोगे तो भी परिणाम वही निकलेगा। अपने पेट की वायु को बाहर निकाल देने पर उसको यथाशक्ति बाहर रोके

रहना चाहिए। जब घबराहट मालूम पड़े तब धीरे–धीरे उस वायु को अन्दर ले लो, किन्तु अन्दर रोकने का अभ्यास नहीं करना चाहिए। वर्षो तक योग साधक यदि इस प्राणायाम को करता रहता है तो वह अवश्य ही ऊर्ध्वरेतस बन जाता है। उसका वीर्य ऊर्ध्वगमन करने लगता है और वह बिन्दुजय कर लेता है।

सिद्धे बिन्दौ महायत्ने किं न सिद्धयति भूतले।

अर्थात्–बिन्दुजय प्राप्त करने के बाद ऐसा कोई साधन नहीं जिसको मनुष्य न कर सके। योगदर्शन में ब्रह्मचर्य–प्रतिष्ठा का फल बतलाया है:–

ब्रह्मचर्य प्रतिष्ठायां वीर्यलाभः।

यस्य लाभादप्रतिधात् गुणानुत्कर्षयति सिद्धश्च विनियेषु ज्ञानमाधतुं समर्थो भवतीति।

अर्थात्–इस प्रकार ब्रह्मचर्य धारण करने से योगी अपने शरीर में अलौकिक गुणों का आकर्षण कर लेता है और शनैः शनैः उसका मन–बुद्धि का इतना ऊँचा विकास हो जाता है कि उसे अपने विनीत शिष्यों के अन्दर शक्ति संचार करने की योग्यता आ जाती है। इसलिए उपरोक्त साधनाओं द्वारा साधक को अपने आपको ऊर्ध्वरेतस बनाने का प्रयत्न करते रहना चाहिए। इसके अतिरिक्त अन्यान्य योग साधनों में शक्तिचालिनी मुद्रा जो बज्रासन के अभ्यास से की जाती है वह भी ऊर्ध्वरेतसता की जननी है। शक्तिचालिनी मुद्रा के अन्दर विपरीत पाद बज्रासन लगा करके भस्त्रिका प्राणायाम किया जाता है, जिसके फलस्वरूप कुण्डलिनी महाशक्ति का जागरण एवं वीर्य का ऊर्ध्वकर्षण अनायास ही होता है।

शीर्षासन एवं ऊर्ध्वरेतसता

शीर्षासन हमारे योगाचार्यो की अमर देन हैं इसको विपरीतकरणी मुद्रा के रूप में भी बतलाया गया है। जो लोग नियम से विधिपूर्वक शीर्षासन का अभ्यास करते हैं उनका वीर्य भी ऊर्ध्वगमन करने लगता है किन्तु शीर्षासन के अभ्यासियों को चाहिए कि इस विपरीतकरणी मुद्रा को किन्हीं योग–शिक्षण केन्द्रों में जाकर सीखें। शीर्षासन के अभ्यासी लोगों को मस्तिष्क का ऊपर वाला भाग जिसे कपाल कहते हैं, वही जमीन पर लगाना चाहिए और अपने आहार का ख्याल रखना चाहिए। इसके अभ्यास के शास्त्रीय लेख है।

अधः शिरश्चोर्ध्वपादः क्षणं स्यात्प्रथमे दिने।
क्षणाच्च किञ्चिदधिकमभ्यसेच्च दिने दिने।।
वलितं पलितं चैव षण्मासोर्ध्व न दृश्यते।
याममात्रं तु यो नित्यमभ्यसेत्स तु कालजित्।।

अर्थात्–पहले दिन एक क्षण के लिए शीर्षासन करना चाहिए। दूसरे दिन एक क्षण से कुछ अधिक बढ़ाये। इस प्रकार बढ़ाते–बढ़ाते महिने भर में दो–तीन मिनट तक ही बढ़ाना चाहिए। शीर्षासन के अभ्यासी योगी को भूखा नहीं रहना चाहिए।

नित्यमभ्यासयुक्तस्य जठराग्निविवर्धिनी।
आहारो बहुलस्तस्य सपाद्यः साधकस्य च।।
अल्पाहारो यदि भवेदग्निर्दहति तत्क्षणात्।।

अर्थात्–जो साधक शीर्षासन का अभ्यास करता है उसकी उत्तरोत्तर जठराग्नि बढ़ती चली जाती है। इसलिए खान–पान में उसको संकोच नहीं करना चाहिए और न किसी प्रकार का व्रतादि करना चाहिए। क्योंकि यदि शीर्षासन का अभ्यासी अल्पाहार होगा तो उसकी जठराग्नि स्वयं उसका दहन कर देगी। शीर्षासन करने वाले साधक को भी अपने अभ्यास काल में यह धारणा करते रहना चाहिए कि मैं अपने वीर्य को नाभिमण्डल से ऊपर की ओर आकर्षित कर रहा हूँ। नाभि–मण्डल के नीचे के भाग को ऊर्ध्वकर्षण करने से साधक अवश्य ही ऊर्ध्वरेतसता को प्राप्त कर लेता है।

यहाँ जिन क्रियाओं का संकेत किया गया है उन सबको साधक को समझकर करना चाहिए। यदि विधि पूरी तरह समझ में न आ सके तो अवश्य योग–शिक्षकों से शिक्षा प्राप्त करके ही इन क्रियाओं को करना चाहिए जिससे वे पूर्ण लाभ उठा सकें।

●सम्पादकीय

नूतन वर्ष मंगलमय हो !

आचार्य (डा.) दासलाल शर्मा

प्रिय गुरुभाई बहिन / पाठकगण

जय सद्गुरु जी की !

ईसवीं कलेन्डर वर्ष के अनुसार सन् 2016 समाप्त हो चुका है और सन् 2017 का आगमन हो रहा है। हमें अपने बीते वर्ष की उपलब्धियों पर एक नजर डालनी चाहिए और जो कार्य अधूरे रह गये हैं उनको पूर्ण करने का प्रयत्न करना चाहिए। अतीत की गल्तियों पर विचार कर उनमें सुधार करने का प्रयत्न करना चाहिए। श्रेय मार्ग या कल्याण मार्ग पर चलने का संकल्प लेना चाहिए। मनुष्य सांसारिक सुख भोगों में अपना समय निकाल देता है और अन्त में पछताता है। ''भोगों न भुक्ता वयमेव भुक्ता:'' हम भोगों को भोगने का प्रयास करते हैं किन्तु भोग ही हमें खा जाते हैं। हम ही भुक्त हो जाते हैं। मनुष्य को एक सीमित आयु मिली हुई होती है इसी में बहुत काम करने होते हैं। जीवन को क्षणभंगुर कहा गया है – गीता में स्वयं भगवान् कहते हैं –

दु:खालयमशाश्वतम् अर्थात् यह शरीर दु:खों का घर है और अनित्य है। जीवन में शारीरिक और मानसिक नाना प्रकार के रोग लगे रहते हैं इसलिए भगवान कहते हैं –

'अनित्यमसुखं लोकं इमं प्राप्य भजस्व माम्' इस नश्वर शरीर की सार्थकता इसी में है कि हम ईश्वर को प्राप्त कर लें। प्रारब्ध के अनुसार पुण्य का फल सुख और पाप का फल दु:ख के रूप में हम भोग ही रहे हैं। भगवान पतंजलि देव जी कहते हैं कि भविष्य के दु:ख को हम हटा सकते हैं अत: सूत्र दिया है – **'हेयम् दु:खमनागतम्'** अनागत दु:ख को हम हटा सकते हैं। योग साधना के विज्ञान से हम आने वाले समय के दु:ख को दूर कर सकते हैं। तप एवं समाधि से क्लिष्ट कर्म रूप दु:ख को तनु या हल्का किया जा सकता है। इसे योग में क्लेश का तन्वीकरण कहते हैं। महर्षि पतंजलि जी महाराज ने पुरुषार्थ के सिद्धान्त को पुष्ट किया है। पुरुषार्थ से मनुष्य अपने भाग्य को बदल सकता है। मनुष्य अपने भविष्य को सुधार सकता है। कुछ लोग कहा करते हैं कि भाग्य में जो लिखा है उतना ही मिलता है। यह ठीक है कि पूर्व कृत कर्म के अनुसार सुख दु:ख मिलता है किन्तु यह भी तो सिद्धान्त है कि मनुष्य कर्म के लिए स्वतन्त्र है उसे कर्म करना ही चाहिए। योगी सजग रह कर कर्म करता है। कोई ऐसा नया कर्म संस्कार नहीं बनने देता है जिससे वह और नये संस्कार के भुगतान में पिसता रहे। गीता में इस संदर्भ में भगवान कहते हैं – **योग सन्यस्त कर्माणं ज्ञान संछिन्न संशयम् आत्मवन्तं न कर्माणि निबध्नन्ति धनञ्जय।** अर्थात् योग ध्यान से जिस योगी ने कर्म फल को नष्ट कर दिया है। ध्यान के प्रभाव से सर्वसंशयो का नाश कर दिया है ऐसे आत्मनिष्ठ योगी को कर्मबन्धन में नहीं डालते। **'ध्यानात् कर्म फल त्याग:, त्यागाच्छान्ति रन्तरम्'** ध्यान का फल कर्मफल का त्याग है। त्याग से परमशान्ति को प्राप्त करता है। साधक को अपने मन में सदा शुभ ही संकल्प रखना चाहिए। वेद वचन है – **'तन्मेमन: शिव संकल्पमस्तु'** मेरा मन शुभ संकल्प वाला हो। मेरे मन में शुभ विचार ही आयें। मैं मन से पवित्र रहूँ। जो मन से पवित्र होते हैं उन पर ईश्वर की कृपा रहती है। जैसा कि बाईबिल में भी आया है –

'Blessed are the pure in heart for they shall see God.' पवित्रात्मा ईश्वर–दर्शन का अधिकारी होता है। मन का कालुष्य ही शारीरिक व मानसिक रोग के कारण होते हैं। साधक को अपने मन में यह विचार करना चाहिए कि मैं जन्मों–जन्मों से नाना शुभाशुभ योनियों में भटक रहा हूँ। अब की बार परमात्मा ने मुझे कृपा करके मानव देह प्रदान किया है अतः मैं आत्मोत्थान का प्रयास करूँ। गर्भोपनिषद में आया है कि गर्भ में सातवें माह में इसे दिव्य–दृष्टि मिलती है उस समय वह तरह–तरह की प्रतिज्ञायें करता है। वह कहता है –

'यदि योन्यः प्रमुच्येऽहं सांख्य योगमभ्यसे।' यदि अब की बार मैं सुरक्षित बाहर निकल आऊँ तो मैं सांख्य–योग, ध्यान योग का अभ्यास करूँगा जिससे मैं इस अशुभ संसार सागर से पार हो जाऊँ। इस प्रकार से जीव गर्भ में प्रतिज्ञायें करता है किन्तु जन्म लेने के बाद वैष्णवी वायु के स्पर्श लगते ही वह सब कुछ भूल जाता है। गर्भ के कष्ट तथा पूर्व जन्म की स्मृति रूप क्लेशों को याद नहीं रखता है। मनुष्य को शास्त्रों में चतुर्विध पुरुषार्थ की आज्ञा दी गई। धर्म, अर्थ, काम एवं मोक्ष पुरुषार्थ चतुष्टय कहलाते हैं। आत्मा को पतन में न गिरने देना ही धर्म है इसलिए याज्ञवल्क्य आदि ऋषियों ने योग को धर्म के रूप में बतलाया है। जीवन को चलाने के लिए अर्थ की आवश्यकता होती है। अतः न्याय से अर्थोपार्जन करना चाहिए। जीव की कामनायें होती हैं उनको प्राप्त करना व उसमें अधिक लिप्त न होना पुरुषार्थ है। अन्त में मुक्ति के लिए प्रयत्न करना **परम पुरुषार्थ कहा गया है।** अस्तु!

हिन्दु मतावलम्बियों का नया वर्ष चैत्र शुक्ल पक्ष से प्रारम्भ होता है। तभी नवरात्र भीप्रारम्भ होते हैं। विक्रम संवत 2073 का शुभारम्भ होगा इस संवत्सर का नाम प्लवंग होगा। यह नया वर्ष हम सब के लिए सुखदायी व मंगलमय हो यही श्री प्रभु जी के चरणों में प्रार्थना करते हैं।

जैसा बीज हम बोयेंगे वैसी ही फसल उगेगी। जैसी तैयारी करेंगे वैसा ही परिणाम सामने आयेगा। उत्कृष्ट–आत्म चिन्तन हमारे अन्तःकरण को सद्कर्मों की ओर प्रेरित करता है। प्रारम्भ में हम थोड़ा विचलित हो सकते हैं; परन्तु बार–बार के दृढ़ अभ्यास व संकल्प से हमारा स्वभाव उत्कृष्ट चिन्तन का बन जायेगा, जिससे प्रतिपल आत्म निरीक्षण होता रहेगा।

श्री मद्भागवत में योग-परिचर्चा

डॉ. विजय सिंह

अपने पुत्रों देवताओं की दीन दशा, श्री हीनता से दुःखी उनकी माता अदिति भगवान कश्यप से बोलीं– मेरे हितैषी स्वामी अपने संकल्प से मेरे पुत्रों को वे वस्तुएँ फिर मिल जाए ऐसा कोई उपाय कीजिये।

अदिति के इस प्रकार प्रार्थना करने पर कश्यप जी मन ही मन आश्चर्य चकित हो सोचने लगे– कहाँ यह पंचभूतात्मक नष्ट होने वाला शरीर और कहाँ प्रकृत से परे आत्मा। न कोई किसी का पति, न पुत्र और न तो सम्बन्धी ही है। मोह ही मनुष्य को नचा रहा है। उन्होनें प्रकटतः कहा– प्रिये। तुम सम्पूर्ण प्राणियों के हृदय में विराजमान भक्त वत्सल जगदगुरु भगवान वासुदेव की आराधना करो इसके सिवा कोई दूसरा उपाय नहीं है–

उपतिष्ठस्व पुरुषं भगवन्तं जनार्दनम्।
सर्वभूतगुहावासं वासुदेवं जगद्गुरुम्।। 20।। अ.16, स्क.8

कश्यप जी ने अदिति को भगवान को प्रसन्न करने हेतु एक व्रत और द्वादस अक्षर युक्त मंत्र का विधान समझा दिया। बारह दिनों का यह अनुष्ठान अदिति ने मात्र दूध पीकर किया। वे स्तुति करते हुए भगवान को बार – बार नमस्कार करते हुये चिंतन करती कि – प्रभो ! आप ही सबके प्राण और स्वयं जगत के भी स्वरूप हैं। आप योग के कारण तो हैं ही स्वयं योग और उससे मिलने वाला ऐश्वर्य भी आप ही हैं। हे हिरण्य गर्भ ! आपको मेरा प्रणाम है –

नमो हिरण्यगर्भाय प्राणाय जगदात्मने।
योगैश्वर्य शरीराय नमस्ते योग हेतये।। 33।। अ.16 स्क.8

अपने पति कश्यप जी द्वारा बताये नियमानुसार अदिति ने बड़ी सावधानी पूर्वक बारह दिन तक अनुष्ठान किया। इन्द्रिय, मन, बुद्धि को एक मात्र भगवान में एकाग्र करली सहसा भगवान को अपने समझ प्रकट हुआ देखकर अदिति सादर उठ खड़ी हुई पुनः प्रेम विह्वल होकर दण्डवत प्रणाम किया। वह स्तुति करती हुई बोली – प्रभो ! जब आप जिस पर प्रसन्न हो जाते हैं, तब मनुष्यों को ब्रह्माजी की दीर्घ आयु, उनके समान दिव्य शरीर, अभीष्ट वस्तु, अतुलित धन, स्वर्ग, पृथ्वी, पाताल, योग की समस्त सिद्धियाँ, अर्थ, धर्म, कामरूप त्रिवर्ग और ज्ञान प्राप्त हो जाता है। फिर शत्रुओं पर विजय प्राप्त करना छोटी बात है –

आयुः परं वपुरभीष्टमतुल्य लक्ष्मी–
र्द्यौभूरसाः सकलयोग गुणास्त्रिवर्गः।
ज्ञानं च केवल मनन्त भवन्ति तुष्टात्

त्वत्तो नृणां किमु सपत्न जयादि राशिः।।10।। अ.17 स्क.8

भगवान बोले– तुमने अपने पुत्रों की (देवताओं) रक्षा हेतु विधिपूर्वक पूजा एवं स्तुति की है। अतः मैं तुम्हारे गर्भ से उत्पन्न होऊँगा। आगे समय आने पर अभिजित मुहूर्त में भगवान का जन्म हुआ। अदिति ने अपने गर्भ से प्रकट हुए परमपुरुष परमात्मा को देखा वह आश्चर्यचकित और परमानन्दित हो गयीं। प्रजापति कश्यप जी भी भगवान को अपनी योग माया से शरीर धारण किये देख विस्मित हो गये और बार–बार कहने लगे " जय हो " " जय हो "।

दृष्टवादितिस्तं निजगर्भ सम्भवं
परं पुमांसं मुदमाप विस्मिता।
गृहीतंदेहं निजयोगमायया
प्रजापतिश्चाह जयेति विस्मितः।।11।। अ.18 स्क.8

अव्यक्त एवं चित्स्वरूप भगवान काँतिमय आभूषणों तथा आयुधों से युक्त शरीर ग्रहण किया था परन्तु अदिति एवं कश्यप के देखते–देखते वामन वटुक ब्रह्मचारी का रूप धारण कर लिया। देवगुरु वृहस्पति ने यज्ञो पवित्र और कश्यप जी ने मेखला दी। ब्रह्मा जी ने कमण्डलू। यक्षराज कुवेर भिक्षा पात्र भवानी उमा ने भिक्षा दी। इस वेष में भगवान नर्मदा नदी के उत्तर तट पर भृगुकच्छ नामक स्थान पर बलि जहाँ बड़ा भारी यज्ञ कर रहा था वहाँ पहुँचे। उन्हें देख कर बलि को बड़ा आनन्द हुआ उसने उत्तम आसन देकर उनकी पूजा की। हर्षित मन से एक टक वामन भगवान के स्वरूप को देखते हुये बोला– ब्रह्मचारी जी ! आप जो चाहते हों वह सब अवश्य ही मुझसे माँग लीजिये।

भगवान ने कहा – राजन! परलोकहितकारी धर्म के सम्बन्ध में आप अपने गुरुदेव शुक्राचार्य को परम प्रमाण मानते हैं, साथ ही कुलवृद्ध पितामह प्रहलाद जी की आज्ञा में रहते हैं। शाँत पुरुष अपनी आवश्यकता अनुसार ही दान स्वीकार करते हैं। इससे वह प्रतिग्रहजन्य पाप से बच जाता है। अतः मुझे मेरे पग से तीन पग भूमि दान में दो। धन उतना ही संग्रह करना चाहिये जितने की आवश्यकता हो।

शुक्राचार्य जी भगवान की लीला जानते थे अतः राजा बलि को तीन पग भूमि देने को तैयार देखकर उसे सचेत करते हुये बोले– बलि ! स्वयं नारायण ही अपनी योग माया से यह वटुक वेष धारण किये हुये हैं। ये तुम्हारा राज्य, ऐश्वर्य, लक्ष्मी, तेज और विश्वविख्यात कीर्ति सब तुमसे छीन कर इन्द्र को दे देंगे –

एष ते स्थानमैश्वर्य श्रियं तेजो यशः श्रुतम्।
दास्यत्याच्छिद्य शक्राय मायामाणव को हरिः।।32।। अ.19 स्क.8

बलि ने कहा – भगवन ! मेरे गुरुदेव आपका कहना सत्य है। परन्तु मैं प्रहलाद जी का पौत्र हूँ। देने का वचन देकर उसे न दूँ। यह असत्य का भार मुझसे सहन नहीं होगा।

शुक्राचार्य ने देखा यह मेरा शिष्य मेरे प्रति अश्रद्धालु हो रहा है। मेरी आज्ञा को नहीं मानता तब दैवी प्रेरणा से उन्होंने राजा को शाप दे दिया– तू मेरी उपेक्षा करके गर्व कर रहा है अतः तू शीघ्र ही अपनी लक्ष्मी खो बैठेगा। इधर भगवान ने विश्वरूप धारण कर दो पग में ही सकल ब्रह्माण्ड नाप लिया। तीसरा पैर रखने के लिये बलि की तनिक सी भी कोई वस्तु न बचा। प्रथम पग कहते हुये सत्य लोक में जा पहुँचा। उसके नरवचन्द्र–की प्रभा से सत्यलोक की आभा फीकी पड़ गयी। स्वयं ब्रह्मा भी उस चिन्मय प्रकाश में डूब से गये। मरीच आदि ऋषियों, सनन्दन आदि ब्रह्मचारियों तथा बड़े–बड़े योगियों ने भगवान के चरण कमल की आगवानी की–

सत्यं समीक्ष्याब्जभवो नखेन्दुमि–
र्हतस्वधामद्युतिरावृतोऽभ्यगात्।
मरीचिमिश्रा ऋषयो बृहद्व्रता:
सनन्दनाद्या नर देव योगिन:।।1।। अ.21 स्क.8

जिन लोगों ने योगरूप वायु (प्राणायाम) से ज्ञानाग्नि को प्रज्वलित करके कर्म मल को भस्म कर डाला है, वे महात्मा भगवान के चरण की बन्दना किया – **" जे चापरे योग समीर दीपित ज्ञानाग्निना रन्धितकर्मकल्मषा: "** भगवान ने असुर राज बलि से कहा– अब मैं तीसरा पग कहाँ रखूँ। दैत्यराज बलि ने बिना विचलित हुये बोले– आप कृपा करके अपना तीसरा पग मेरे शिर पर रख दीजिये। आप हमारे परम गुरु हैं। आप से हम लोगों का उपकार होता है। अनन्य भाव से योग करने वाले योगीगण जो सिद्धि प्राप्त करते हैं वह सिद्धि बहुत से असुरों को आप से दृढ़ वैर भाव करने से प्राप्त हो गयी है–

यस्मिन वैशनुबन्धेन रूढ़ेन विबुधेतरा:।
बहवो लेभिरे सिद्धिं यामु हैकान्त योगिन:।।6।। अ.22 स्क.8

●●●

शोक संवेदना

गंगापुर सिटी निवासी श्री प्रेम चन्द्र गुप्ता का 9 दिसम्बर को निधन हो गया। श्री प्रभु जी परिवारी जनों को इस महान दुःख को सहन करने की शक्ति दें व दिवंगत आत्मा को शान्ति प्रदान करें। सिद्धयोग परिवार इस दुःख की वेला में अपनी हार्दिक शोक संवेदना व्यक्त करता है।

संपादक
सिद्धयोग मासिक

आध्यात्मिक प्रगति

प्रो. ऋषिराम शर्मा, लखनऊ

माया की यह सृष्टि महत्ब्रह्म के अहंकार से प्रकट होती है, बुद्धिबोधात्मक अहंकार से ही इसका संचालन होता है तथा अहंकार के उत्पत्ति स्थान में ही लीन होती है। इसीलिए भगवान श्रीकृष्ण का स्पष्ट आदेश है कि –

तमेव चाद्यं पुरुषं प्रपद्ये यतः प्रवृतिः प्रसृता पुराणी।।

अर्थात् कल्याणकांक्षी को उस परमात्मा की ही शरण में जाना चाहिए जो इस सृष्टि का आदिस्त्रोत है और जिसके आधीन मायाशक्ति ने इसकी रचना की है। इस संदेश का यही तात्पर्य है कि जिस माया की अनन्त शक्तियाँ हैं, अनन्त प्राणादि भाव हैं तथा अनन्त विस्तार है, उससे मुक्ति किसी भी अहंकारयुक्त साधन अथवा पुरुषार्थ से संभव नहीं है। उपनिषदों में इस रहस्य का पर्दाफाश किया गया है कि –

छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो वृतानि।
भूतं भव्यं यच्च वेदा:वदन्ति।।
अस्मात् मायी सृजते विश्वमेतत्।
तस्मिन् चान्यो मायया सन्निरुद्धः।।

(श्वेता.उप. 4/9)

न चक्षुसा ग्रह्यते नापि वाचा।
नान्यैः देवैः तपसा कर्मणा वा।।
ज्ञानप्रसादेन विशुद्धसत्वः।
ततस्तु तं पश्यते निश्कलं ध्यायमानः।।

(मुण्डक उप. 3/1/8)

अणोरणीयान् महतोमहियान्
आत्मा गुहायां निहितोऽस्य जन्तोः।
तमक्रतुं पश्यति वीतशोकः।
धातुः प्रसादात् महिमानमीशम्।।

(श्वेता. उप. 3/20)

अर्थात् परमात्मा की यह विचित्र लीला है कि अपनी ही माया से अपने ही हिरण्यगर्भ स्वरूप से इस विश्व को प्रकट करके इसके संचालन के लिए वेदों, यज्ञों, तप तथा वृतों एवं अनन्त मायिक भावों

का विधान बनाकर स्वयं को भी अन्य सा अज्ञानी भोक्ता के रूप में अनन्त योनियों में लोकव्यवहार का नाटक किया। अपने को ही दो श्रेणियों में बाँट दिया। एक जीवात्मा तथा दूसरी परमात्मा। जीवात्मा को मायाधीन बना दिया तथा परमात्मा को मायाधीश होकर विश्व का शासनकर्ता बना दिया। अपनी माया शक्ति को भी दो रूपों में विभक्त कर दिया, प्रथम रूप अविद्या है जोकि जीवसृष्टि का कारण है तथा द्वितीय रूप विद्या है जोकि परमात्म भाव की कारण है। वेदों में इस रहस्य का संकेत दिया है कि –

जीवं कल्पयति पूर्वं ततो भावान् प्रथग्विधान्।
वाह्यानाध्यात्मिकांश्चैव यथा विद्या तथास्मृतिः।।
कल्पयति आत्मनात्मानमात्मा देवः स्वमायया।
स एव बुध्यते भेदान् इति वेदान्तविनिश्चयः।।

अर्थात् यह वेदान्त शास्त्र का निर्णय है कि परमात्मा ने पूर्व में प्राणादि माया के अनन्त भावों की कल्पना कर जीवसृष्टि बनायी तत्पश्चात् अविद्यारूपी स्मृति से लोकव्यवहार की वहिर्मुखी प्रवृत्ति तथा विद्यारूपी स्मृति से आध्यात्मिक भाव प्रकट किया। पुनः अपनी विद्यारूपी माया से अपने को भी प्रकट किया जिससे ईश्वर के रूप में मायाधीश होकर माया के विधान को क्रियान्वित किया। इन दो रूपों में ईश्वर सत्यस्वरूप तथा ज्ञानस्वरूप है और जीव सत्यस्वरूप पर विकल्पित अज्ञानस्वरूप है। परमात्मा का स्वरूप प्रकृति के सूक्ष्मतर तत्वों से भी सूक्ष्मतम है तथा प्रत्येक जीव की हृदयग्रन्थि में गुप्त है। उसका साक्षात्कार न तो चक्षु से सम्भव है, न वाणी से, न अन्य मनसहित ज्ञानेन्द्रियों से और न बुद्धि से। इस उद्देश्य के लिए तो उसी परमात्मा की कृपा से प्राप्त प्रज्ञाचक्षु की आवश्यकता होती है। यह प्रज्ञाचक्षु तत्वज्ञान का प्रसाद है जोकि विशुद्ध चित्त में परमात्मकृपा से परमात्मा के दिव्य स्वरूप से प्रकट होता है। गीता में भगवान श्रीकृष्ण ने भी इसका संकेत दिया है कि –

न हि ज्ञानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते।
तत्स्वयं योगसंसिद्धः कालेनात्मनि विन्दति।।
एवं सततयुक्तानां भजतां प्रीतिपूर्वकम्।
ददामि बुद्धियोगं तं येनमामुयान्ति ते।।
तेषामेव अनुकम्पार्थमहं अज्ञानजं तमः।
नाशयामि आत्मभावस्थो ज्ञानदीपेन भास्वतः।।

अर्थात् प्रज्ञाचक्षुरूपी ज्ञान के समान उत्कृष्ट तथा पवित्र इस संसार में कोई तत्व नहीं है। किन्तु वह अहंकारयुक्त पुरुषार्थ से नहीं प्राप्त होता अपितु उचित समय पर स्वयं ही परमात्मा का कृपाप्रसाद के रूप में प्राप्त होता है। इसी को योगसंसिद्धि कहा गया है। अतः जो जीव श्रद्धाभक्ति से युक्तयोगी होकर परमात्मा की उपासना करते हैं उन्हीं को यह योगसिद्धि वाला बुद्धियोग प्रसाद के रूप में प्राप्त होता है। उन्हीं के लिए परमात्मा की कृपा से अज्ञानजनित अविद्या का अंधकार नष्ट होता है जिससे कि हृदयस्थ ज्ञानस्वरूप परमात्मा से ज्ञानचक्षु की प्राप्ति होती है। यह ज्ञानस्वरूप परमात्मा ही सद्गुरु है, क्योंकि शास्त्र का कथन है कि –

नास्ति तत्वं गुरोः परम्।
गुरोः कृपाप्रसादेन ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः।
सामर्थ्यं तत्प्रसादेन केवलं गुरुसेवया।।
यत्र अवच्छेदनार्थे कालो नोपवर्तते सः गुरुः।
गुरुणामपि गुरुः कालेनान्वच्छेदात्।।

अर्थात् सद्गुरु ही विशुद्ध परमब्रह्म हैं अतः गुरु से उत्कृष्ट कोई अन्य सत्ता है ही नहीं। गुरुकृपा से ही तीनों महादेवों ब्रह्मा, विष्णु तथा शिव को सृष्टि की रचना, सृष्टि पर शासन तथा सृष्टि के प्रलय की सामर्थ्य प्राप्त हुई है। इस संसार में परमात्मा कालातीत होने के कारण गुरुओं का भी गुरु है। अतः गुरु वह सत्ता है जो काल की सीमा से भी परे कालातीत है। इसीलिए उपनिषदों में गुरु को परमात्मा का ही मायातीत स्वरूप माना है और उसी रूप में गुरु की वन्दना की है कि –

येनेरिताः प्रवर्तन्ते प्राणिनः स्वेषु कर्मसु।
तं वन्दे परमात्मानं स्वात्मानं सर्वदेहिनाम्।।
यस्य पादांशुसम्भूतं विश्वं भाति चराचरम्।
पूर्णानन्दं गुरुं वन्दे तं पूर्णानन्दविग्रहम्।।

अर्थात् सृष्टि के समस्त प्राणियों की बुद्धिरूपी गुफा में स्थित आत्मा के रूप में विद्यमान उस परमात्मा की हम वन्दना करते हैं जिसकी प्रेरणा से सभी प्राणी अपने–अपने कार्यों में लगे हैं। हम उस ज्ञानविज्ञानस्वरूप आनन्दमूर्ति गुरुदेव की भी वन्दना करते हैं जिसकी चरणरज से उत्पन्न चराचर जगत प्रकाशित हो रहा है और जो परमात्मा का ही शुद्ध स्वरूप है। भगवान श्रीकृष्ण इस सत्य की स्वयं पुष्टि करते हैं कि –

सर्वभूतस्थितं यो मां भजति एकत्वमास्थितः।
सर्वथा वर्तमानोऽपि स योगी मयि वर्तते।।

अर्थात् जो योगयुक्त महात्मा मुझमें एकत्वभाव से मेरी उपासना करते हैं वह वस्तुतः शरीरधारी होते हुए भी मेरे दिव्य स्वरूप में ही रमण करते हैं। शिवसंहिता में भगवान शिव का भी यही निष्कर्ष है कि योगसिद्धि तथा ज्ञानचक्षु की प्राप्ति सिद्धगुरु की कृपा के बिना सम्भव नहीं है। किन्तु सिद्धगुरु की संगति शुद्ध अन्तःकरण वाले साधक को पुण्यों के फलस्वरूप होती है। भगवान शिव का कथन है कि –

पश्चात् पुण्येन लभते सिद्धेन सह संगतिम्।
ततः सिद्धस्य कृपया योगी भवति नान्यथा।।
ततो नश्यति संसारो नान्यथा शिवभाषितम्।
योगेन रहितं ज्ञानं न मोक्षाय भवेत् विधे।।

(क्रमशः)

जब शिव गणों ने त्रिशूल चलाऐं

जगदीश राए बंसल 'अधम' 9212434003

सिद्धयोगाधिपति योग योगेश्वर गुरुदेव भगवान श्री चन्द्रमोहन जी महाराज गुरु पूर्णिमा के तुरन्त पश्चात आशुतोष भगवान शंकर भोले बाबा के निमित्त एक विशाल एवं उत्साहित अनुष्ठान का आयोजन अपने संवाई धाम आश्रम में किया करते थे। वैसे तो भाग्य विधाता जी अनुष्ठान काल में मौन व्रत ही रखते थे, मगर अपने साधक बच्चों के लिए प्रवचन अवश्य करते थे कि एक साधक को किस प्रकार रह कर अपना भविष्य उज्जवल बनाना है एवं अपने भावी जन्म का स्तर निर्माण कैसे करना है.....इत्यादि।

यह अनुष्ठान मात्र अपने लाड़लों के लिए ही नहीं, अपतु स्थानीय जनता और पूरे देश के कल्याणार्थ किया जाता रहा है। इसी परम्परा को शिरोधार्य कर अखिल ब्रह्माण्ड नायक गुरु देव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के परम प्रिय शिष्य योग योगेश्वर श्री दासलाल जी महाराज ने इस वर्ष सन् 2014 में दिनांक 15 जुलाई से 24 जुलाई तक बड़ी धूम–धाम से सैंकड़ों श्रद्धालुओं की उपस्थिती में सम्पन्न किया।

इस अनुष्ठान के मध्य उपस्थित प्रत्येक गुरुभाई का हृदय प्रफुल्लित एवं उत्साहित था। इसी ताम–झाम के चलते एक सायं सूर्यास्त से पूर्व जब इन्द्रधनुष में झांकते सूर्य नारायण की आभा से पश्चिम दिशा मुस्करा रही थी और मयुर की पीं....हो, पीं.....हों की नाद के मध्य हंसते – हंसते एक गुरुभाई श्री मौजी राम ने बताया कि एक बार सिद्धों के सरदार गुरुदेव जी महाराज का कोलकाता में योग प्रचार कार्यक्रम चल रहा था। उस योगाधिपति जी की युवावस्था थी। केश दाढ़ी नहीं रखते थे। योग शिविर में साधकों एवं सम्भ्रान्त व्यक्तियों का उत्साह–संख्या एवं उमड़ता प्यार देखते ही बनता था। प्रवचनों में आराध्य देव जी अपने सद्गुरु देव अखिल कोटि ब्रह्माण्ड नायक जगत नियन्ता महाप्रभू श्री राम लाल जी महाराज द्वारा विरासत में मिले योगामृत को दोनों हाथों से लुटा रहे थे।

इस ख्याति को कानों कान सुनकर, एक दिन शिविर में वेद–शास्त्र, पूजा–पाठ के कथित दो विद्वान पंडित जी महाराज पधारे। सिद्धेश्वर जी का हाव–भाव, गठीला पुष्ट शरीर, मस्तक पर चन्द्र सी छटा, वाणी में तेज, और मान–मर्यादा देख कर उन दोनों पंडितों के मन में राग द्वेष की ज्वाला भड़क उठी। परस्पर एक दूसरे से कहने लगे कि यह पाखण्डी हमारा रोजगार चौपट करके जाएगा। लोग हमारा मान सम्मान करते हैं, पैरों में पड़ते हैं, अच्छी दक्षिणा देते हैं.....। हमें कुछ करना चाहिए।

परिणामत: दोनों निकट के एक पार्क में गए और योजना बनाई कि हम इस गोल–मोल को शास्त्रार्थ में पछाड़ेंगे। इस प्रकार से सारी रात्रि पार्क में चन्द्रमा की चाँदनी में बैठ कर गीता और

रामायण से छाँट–छाँट कर प्रश्न लिख लिए। गुरु जी के प्रति खूब जहर उगला कि ये पहलवान सेठों के मेवे रबड़ी–मलाई चाट–चाट कर चमक गया है। मगर हम धर्म की रक्षा करेंगे। समाज को बुराई से निजात दिलवांएगे और उस यश का श्रेय हम लूटेंगे.....। इस प्रकार प्रातः के चार बज गए।

दोनों विप्र बहुत प्रसन्न थे कि:–

आज हमारी चतुराई की परीक्षा होगी
फिर जब हम ना होंगे तो हमारी चर्चा होगी
कभी पलटेंगे जब इतिहास के पन्ने
तब जनता की आँखों में आँसु होंगे।।

अपनी गाल बजाते – बजाते ज्यौं ही दोनों विप्र खड़े हुए त्यौं ही वहाँ दो शिवगण प्रकट हुए। दोनों गणों के हाथ में चमकीले त्रिशूल थे। उन्होंने आव देखा ना ताव टूट पड़े समाज के उक्त ठेकेदारों पर, दे दना दन – दे दनादन। विप्र घबरा गए, ये क्या बला आई ? रोए चिल्लाए बोले ठहरो–ठहरो मत मारो हम मान्यवर ब्राह्मण हैं। हमारा क्या अपराध है ? शिव गण बोले पहले अपने प्रश्नों का उत्तर लेलो फिर छोड़ेंगे। विप्र बोले, हमें उत्तर–सुतर कुछ नहीं चाहिए। हाथ जोड़ते हैं,..... क्षमा कर दो.....मत मारो.....।

देव गण बोले, क्षमा तो वही पहलवान करेंगे। विप्र बोले भगवान हमें कुछ समय दीजिए.... क्षमा माँग लेंगे.....। शिव गणों ने उनको कुछ समय दे दिया। रहीम जी कहते हैं :–

खीरा सिर ते काटिए–मलिये नमक लगाय।
रहिमन करुये मुखन को–चाहियत इहै सजाय।।

अब दोनों विप्र सिर पर पैर रख कर भागे और पहुंच गए हमारे आपके आदरणीय गुरु भाई श्री रघुनन्दन प्रसाद अग्रवाल के पास। वहाँ उन्होंने हाल ही में एक अनुष्ठान करने का गर्व था। वहाँ पहुँच कर दोनों सेठ जी के पैरों में पसर गए। बोले सेठ जी त्राहि माम, बचाओ....माफ कर दो.... गलती हो गई.....फिर ऐसी गलती नहीं करेंगे.....।

मुश्किल है कि आपको भूल पाएँ
ना मुमकिन है कि योगी से छूट जाएं।
भंवर में जान फंसी है सेठ जी
रहमत करो कि हम बच जाएँ।।

सेठ जी हैरान ! बोले क्या माजरा है पं. जी ? पहले आप उपर बैठो क्या गलती–कैसी क्षमा... ...सच–सच बताओ। पं. जी बोले, सेठ जी कल आप हरियाणा भवन में प्रचार सुनने गए थे। उन्हीं महाराज के अपराधी हैं हम। हमने आपको वहाँ अगाड़ी में देखा था। आप ही हमें क्षमा दिलवा सकते हैं। वरना हम अभी–अभी मारे जाएंगे.....इत्यादि।

परिणामस्वरूप तीनों भव भय हारी की चरण–शरण में हरियाणा भवन पहुँचे। उस समय

त्रिलोकी नाथ दया के सागर जीवन तत्व साधन कर रहे थे। देखते ही दोनों विप्र श्री चरणों में पड़ गए। मुख से कुछ बोला नहीं जा रहा था। भक्त.....वत्सल भगवान ने दोनों को उठा कर अपने हृदय से लगा लिया। पं. जी बोले, भगवन हमें क्षमा कर दो। आँसू बह रहे थे गला रून्ध गया था। सेठ जी ने ही जो कुछ बतलाया तब गुरुदेव भगवान बोले– पहले तुम अपने प्रश्नों के उत्तर ले लो– तुमने कोई अपराध नहीं किया। तुम्हें क्षमा करता हूँ। इस प्रकार क्षमा पाकर ब्राह्मणों ने अपनी गर्दिश पर धूल डालने हेतु दीक्षा लेने की मनुहार लगाई। अन्तर्यामी जी सब जानते हैं। अतः उनको अभय दान के रूप में दीक्षा दे ही दी। दोनों विप्र योग शक्ति से अनभिज्ञ, स्वयं से लज्जित ठगे से रह गए कि क्या से क्या हो गया। अनायास ही सोचते रह गए कि :–

इसकी मुस्कां ने हमारे होश उड़ा दिए
अभी होश आया तो पुनः मुस्का दिए।

सेठ जी का भी साधुवाद करना था अतः नजरें पैरों से साध कर बुदबुदाए कि :–

योग की हर कड़ी खुशबू दे आपको
गुरु की हर वाणी रोशनी दे आपको।
हम और कुछ कहने के काबिल ही नहीं
पर देने वाला हर खुशी दे आपको।।

खुसर – फूसर तो यह थी कि यें दोनों हरियाणा राज्य के झज्झर जिला के अन्तर्गत बेरी गाँव के मूल निवासी थे। और सुना गया था कि अन्ततोगत्वा उनका अनिष्ठ ही हुआ।

●●●

परमात्मा की व्याख्या

कुछ ज्ञानियों ने कहा " परमात्मा प्रकाश की तरह है। " कुछ ज्ञानियों ने कहा: " परमात्मा महान अंधकार की भाँति है। " तुम्हारी पसंद की बात है। तुम अगर थोड़े भयभीत व्यक्ति हो, तो तुम कहोगे: " परमात्मा प्रकाश की भाँति है। " अगर तुम थोड़े निर्भीक व्यक्ति हो, तो तुम कहोगे " परमात्मा गहन अंधकार की भाँति है। "

ओंकार की उपासना

दिनेश चन्द्र शर्मा

साधकों का अनुभव है कि ऊँ के उच्चारण से मन एकाग्र होने लगता है और मन अन्तर्मुखी होने लगता है। ओम् ध्वनि का गुजन करने पर चचल मन शान्त होने लगता है और तनाव मिटने लगता है। डिप्रेशन व तनाव ग्रस्त लोगों को ओंकार सस्वर उच्चारण करने पर लाभ मिलता है।

प्रणव की उपासना का शास्त्रों में बड़ा विधान है। योग दर्शन में बताया गया है कि प्रणव का जाप करना चाहिए और उसके अर्थ स्वरूप परमेश्वर का ध्यान करना चाहिए। प्रणव का जाप करने और उसके अर्थ स्वरूप ईश्वर का ध्यान करने से योगी का चित्त अनायास ही एकाग्र होता है। शास्त्रों की मान्यता है कि प्रणव का उपासक अवश्य ही परम कल्याण को प्राप्त होता है। **" प्रणवादि पवित्राणाम् जपः स्वाध्यायः "** ओंकार आदि पवित्र नामों का जप स्वाध्याय कहा गया है।

गुरुदेव योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज ने देश भर में भ्रमण कर योग का प्रचार – प्रसार किया। गुरुदेव अपने प्रवचनों में कहा करते थे कि प्रणव की उपासना करने वाले साधको को चाहिए कि वे प्रारम्भिक अवस्था में जिह्वा के द्वारा ही प्रणव के जप का अभ्यास करें। जिह्वा से प्रणव का जप करते – करते स्वभावतः वह मंत्र मन में प्रवेश कर जायेगा। साधक यदि अपने जीवन को संयमित रखते हुए और युक्ताहार विहार होकर अपनी साधना को बढ़ाता है तो जिहवा से प्रणव का उच्चारण करते ही वह मंत्र उसके मन में प्रवेश कर जाया करता है। साधक को शनैः शनैः अपने मानस जप के अभ्यास को बढ़ाना चाहिए।

भगवान श्री कृष्ण ने इस पवित्र साधना का वर्णन करते हुए कहा है कि इस प्रकार निरन्तर अभ्यास से साधक निर्वाण कालीन शान्ति को पा जाता है।

योगी युंजीत सततमात्मानं रहसि स्थितः
एकाकी यत चित्तामा निराशीर परिग्रहः।
शुचौ देशे प्रतिष्ठाय स्थिरमासनमात्मनः
नात्युच्छ्रितं नाति नीचं चैलाजिन कुशोत्तरम।
तत्रैकाग्रं मनः कृत्वा यतचित्तेन्द्रिय क्रियः
उप विश्यासने युञ्ज्याद्योगमात्म विशुद्धये।

समं काय शिरोग्रीवं धारयन्नचलं स्थिरः
सम्प्रेक्ष्य नासिकाग्रं स्वं दिशांश्चानव लोकपन
प्रशन्तात्मा विगत भी ब्रह्मचारी व्रते स्थितः
मनः संयम्म मच्चितो युक्त आसीत मत्परः
युंजन्नैवं सदात्मानं योगी नियत मानसः
शान्तिं निर्वाण परमां मत्संस्थामधि गच्छति।

भगवान श्री कृष्ण के इस आदेश के अनुसार साधक को अपने जीवन को संयमित करके प्रणव का जप करना चाहिए। साधक को पवित्र स्थान में अपना आसन उक्तानुसार रखकर एकाग्रमन से ध्यानयोग का अभ्यास करना चाहिए। साधक का जीवन संयमित होना चाहिए।

ईश्वर का बोधक नाम प्रणव ॐ है। प्रणव उपासक अवश्य ही परम कल्याण को प्राप्त होता है। उपनिषदों में कहा गया है कि ओंकार ही ब्रह्म है। इस एकाक्षर का अवलम्ब लेकर साधक ब्रह्म लोक की महिमा को पा जाता है। श्री याज्ञवल्कय जी महाराज ने ओंकार की महिमा बताते हुए कहा कि अदृष्ट विग्रह देव जो अव्यक्त है। मन की धारण से जिसका चिन्तन किया जाता है उस परम पुरुष का नाम ही ॐ है। ओम शब्द का उच्चारण करने से वह अव्यक्त आत्मा प्रसन्न होता है– **तस्योंकारः स्मृतो नाम तेना हूतः प्रसीदति।** शास्त्रों में बताया गया है कि ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि के जितने नाम हैं उन सबका समावेश स्वतः ही प्रणव में हो जाता है। सभी प्रणवात्मक है।

योग दर्शन में प्रणव की महिमा बताते हुए कहा गया है कि प्रणव के जाप करने से मनुष्य को प्रत्यक् चेतन की प्राप्ति और उसके अन्तरायों की निवृत्ति स्वाभाविक हो जाती है। व्याधि, स्त्यान, संशय, प्रमाद, आलस्य, अविरति, भ्रान्तिदर्शन, अलब्ध भूमिकत्व और अनस्थितत्व योग के अन्तराय हैं। ये सब अन्तराय चित्त में विक्षेप करने वाले हैं। इन सबकी निवृत्ति के लिए शास्त्रों में अभ्यास और वैराग्य रूप दो उपाय बताये गये हैं। पतंजलि देव जी महाराज का भी निर्देश है कि इन सब प्रकार के अन्तरायों की निवृत्ति के लिए एक ही परमतत्व का अभ्यास करना चाहिए।

महर्षि पतंजलि जी ने योगदर्शन के समाधिपाद में ईश्वर का लक्षण बताते हुए निर्देश दिया है कि ईश्वर परम गुरु है और उसका बोधक नाम (ॐ) ओम है। इस ओम का जप करना चाहिए और उसके अर्थ रूप परमेश्वर का ध्यान करना चाहिए। ब्रह्मा, विष्णु, शिव आदि से अतीत जो परासत्ता है वही प्रणव है अथवा ब्रह्मा, विष्णु, महेश आदि के अन्दर व्याप्त रहने वाली सत्ता प्रणव है। शास्त्रों में बताया गया है कि गुरुदेव भी प्रणव स्वरूप हैं। गुरुदेव के ध्यान का भी यही फाल बताया गया है :–

गुरुर्ब्रह्मा, गुरुर्विष्णु गुरु साक्षात्महेश्वरः।
गुरुरेकं परं ब्रह्म तस्मै श्री गुरुवे नमः।

श्री गुरुदेव ब्रह्मा, विष्णु, शिवात्मक एवं स्वयं परब्रह्म स्वरूप हैं। भगवान सदाशिव ने गुरुगीता में नास्ति तत्वं गुरो परम कहकर सद्गुरु को परमतत्व बताया है। सद्गुरु सत्ता में सभी देवी देवताओं का समावेश होता है। पूज्य गुरुदेव का भी निर्देश है कि साधक सदैव अभ्यासशील बना रहे और अपने गुरु मंत्र का अधिकाधिक जाप करें एवं इष्टदेव का ध्यान करें। ऐसा करने से अन्तरायों की निवृत्ति स्वतः होती चली जाती है। गुरु मंत्र का जाप व ध्यान अवश्य ही नियमित रूप से करना चाहिए।

गीता के आठवें अध्याय के श्लोक 12 व 13 में भगवान श्री कृष्ण ने ओंकार की महिमा बताते हुए कहा है –

सर्वद्वाराणि संयम्य मनो हृदि निरूध्य च
मूर्ध्न्याधायात्मन : प्राणमा स्थितो योग धारणम्
ओमित्येकाक्षंर ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन
य : प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।

सब इन्द्रियों को विषयों से हटाकर तथा मन को हृद देश में स्थिर करके और अपने प्राण को मस्तक में स्थापन करके योग धारणा में स्थित हुआ जो पुरुष ऊँ इस एक अक्षर रूप ब्रह्म को उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थ स्वरूप का चिन्तन करता हुआ शरीर को त्याग कर जाता है वह परम गति को प्राप्त होता है।

भगवान कृष्ण गीता में कहते हैं कि मामनुस्मार युद्ध च अर्थात् सदैव उनका स्मरण करते रहे। पूज्य गुरुदेव श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के प्रवचनों– में निर्देश है कि नियमित रूप से गुरुमंत्र का जाप करो और नियत समय पर ध्यान में बैठों। ऐसा करने से सर्व शक्तिमान श्री प्रभु जी कृपा अवश्य करेंगे। चलते फिरते उठते बैठते हर समय मन को गुरुमंत्र के जाप से लगाने का प्रयास करना चाहिए।

●●●

आचार्य जी के आगामी कार्यक्रम

दिनांक 27 जनवरी 2017 से 1 फरवरी 2017 तक प्रयाग राज (इलाहाबाद) में माघ मेला कार्यक्रम में सम्मिलित रहेंगे।

तुम्हारी जय होवे भगवान

श्रीमती शारदा सिसौदिया

हमारा प्यारा प्यारा सँवाई धाम, जहाँ विराजे सर्वशक्तिमान
सृष्टि के अधिष्ठाता, देवाधिदेव प्रभुदेव रामलाल महाराजा
साथ में सद्गुरुदेव चन्द्रमोहन करतार, जिन्होंने एक सुन्दर
पवित्र गुफा बनाई, जहाँ झिलमिल सितारों का
ज्योतिर्मय अँगना, जिसका नाम है सँवाई धाम
तुम्हारी जय होवे भगवान
तुम हो सकल ब्रह्माण्ड के प्रणेता, सर्वशक्तिमान प्रभु रामलाल महाराज
जिन्होंने किया जग में योग प्रचार, उनका है अनूठा दरबार
वे हैं सकल लोकों के सरकार, विराजे सिद्धों के सिद्ध सिद्धेश्वर महाराज
जिनसे मिलता हमें सदा वरदान, पल-पल होती हम पर सुखों की बौछार
मिलती हमें सदा अनूठी सौगात, मिलता उनसे सदा आशीष
जीवन में कमी ना होती कोई कशीष,
तुम्हारी जय होवे भगवान – तुम्हारी जय होवे भगवान
जीवन होता सर्व सुख धाम, तुम्हारी जय होवे भगवान
सँवाई धाम अनुपम अद्वितीय, सब धामों का सरताज
भव्य और आलीशान, भक्ति योग और संयम की त्रिवेणी का होता संयम
जिससे पापों का होता शमन, करें प्रभु का बार-बार वंदन
शत बार नमन शत बार नाम
तुम्हारी जय होवे भगवन, तुम्हारी जय होवे भगवान

अच्छे और बुरे का द्वन्द्व अज्ञान से ही उत्पन्न होता है। द्वन्द्व-बद्ध अज्ञानाच्छादित आत्मा, भले एवं बुरे दोनों के चुंगल में फँसा रहता है। वह स्थूल जगत, सूक्ष्म जगत एवं मानसिक जगत के भले और बुरे की इच्छा करता है। अतः उस अपरिच्छित अवस्था में नहीं पहुँच पाता, जो जीवन के अनन्त एवं परिवर्तन रहित पार्श्व में प्राप्तव्य है। अतः द्वैत के सीमा क्षेत्र के परे अनन्त की खोज करनी चाहिये।

योग-आसन

पश्चिमोत्तानासन

प्रसार्य पादौ भुवि दण्डरूपौ, दोर्भ्या पदा ग्रद्वितय गृहीत्वा।।
जानूपरि न्यस्त ललाटदेशो, बसेदिदं पश्चिमोत्तानमाहुः।।

अर्थात् अपने दोनों पैरों को लम्बे भूमि पर फैलाकर दोनों हाथों से फैले हुए दोनों पैरों के अंगूठों को इस प्रकार तनाव के साथ पकड़ें कि पैर सिकुड़ने न पायें। उसके बाद अपने मस्तक को दोनों घुटनों के बीच लगा दें। इसी को पश्चिमोत्तान आसन कहते हैं।

करने की विधि – अपने दोनों पैरों को लम्बे फैलाकर व अपने दोनों हाथों को ऊपर की ओर से तनाव के साथ लाकर अपने फैले हुए दोनों पैरों के अँगूठे को इस प्रकार खींचकर पकड़ें कि फैले हुए पैर सिकुड़ न सकें उससे अपना ललाट देश (शिर) दोनों घुटनों के बीच में लगा दें, इसी को पश्चिमोत्तान आसन कहते हैं।

अभ्यास का समय – अपने शरीर के बलाबल को देखकर आधे मिनट या 20 सैकेण्ड से प्रारम्भ करें व प्रतिदिन पाँच या सात सैकण्ड बढ़ाते चले जायें और दो मिनट तक ले जायें। परमार्थ दृष्टि से करने वाले जिज्ञासु साधु लोग अभ्यास बढ़ाकर इसे आधा घण्टा व घण्टा तक बढ़ा सकते हैं।

लाभ –

इति पश्चिमोत्तानासनाग्रय, पवनं पश्चिम वाहिनं करोति।
उदयं जठरानलस्य कुर्यादुदरे, काश्यमरोगतां च पुंसाम्।।

अर्थात् यह उत्तमोत्तम पश्चिमोत्तान वायु को पश्चिमवाही करके जठराग्नि को बढ़ाता है, और पेट पतला करता है। पहिले जानुशिरासन में बतलाये लाभ इस आसन के अभ्यास से प्रायः सभी ही प्राप्त होते हैं। वायु को पश्चिमवाही करना कुण्डलनी जागृति का कारण बनता है। स्नायु मण्डल कोमल होकर उत्तमोत्तम रस रक्त का वहन करता है।

रोग भगाओ, अज्ञान मिटाओ और श्री गणेश जी

प्रो. मनमोहन कृष्ण त्रिखा

डॉ. बारबर्ग (**Dr. Warburg**) जर्मनी के मशहूर डॉक्टर थे जिन्हें नोबल पुरस्कार भी मिला। उन्होंने बताया कि कैन्सर के कीटाणु आक्सीजन वाले वातावरण में मर जाते हैं और आक्सीजन कैन्सर रोग को पनपने नहीं देती। कैन्सर के दूसरे डाक्टरों ने भी इस बात को स्वीकारा और एक डाक्टर ने कहा कि शरीर में अधिक आक्सीजन पहुँचाने का एक तरीका है – गहरा साँस इस प्रकार से लेना कि हमारा पेट फूले यानि जब भी श्वास अन्दर लें तो पेट फूले (गुब्बारे की तरह) और जब भी श्वास शरीर के बाहर फैंके तो पेट सिकुड़े। डॉ. कैथ स्काट मुम्बी (**Dr. Keith Scott, mumby, M.B., C.H.B., Ph.D.**) जिन्होंने मानचैस्टर यू. के. से मैडिसिन की डिग्री प्राप्त की, ने भी कैन्सर को ऑक्सीजन से दूर भगाने की बात कही और वह डॉ. बारबर्ग से सहमत थे कि कैन्सर सैल्स चीनी से पनपते हैं, बढते हैं और आक्सीजन से कम होते हैं। इसी प्रकार से नार्थ–ईस्टर्न युनिवर्सिटी के रिसर्चर **Michail Sikkovsky** ने कहा यदि हम श्वास द्वारा ज्यादा आक्सीजन शरीर में लेते हैं तो हमारे इम्यून सैल्स को शक्ति मिलती है और ये बड़ी बहादुरी से कैन्सर सैल्स से लड़ते हैं और उन्हें हरा कर समाप्त कर देते हैं या मार देते हैं।

अगर हम इन डाक्टरों की बातों और हिन्दु संस्कृति के बीच एक सामञ्जस्य/रिश्ता स्थापित करने का प्रयास करें तो हम पाते हैं कि इन दोनों में पारस्परिक सम्बन्ध है। हिन्दु–संस्कृति में कोई भी कार्य प्रारम्भ करने से पहले गणेश जी का आवाहन किया जाता है और उनकी पूजा/उपासना की जाती है। दिपावली के शुभ अवसर पर भी पहले गणेश जी की पूजा और फिर बाद में लक्ष्मी जी की पूजा की जाती है।

हम जानने का प्रयास करेंगे कि हम ऐसा क्यों करते हैं। और यह भी कि इसका व्यावहारिक एवं आध्यात्मिक दृष्टि से क्या महत्व है।

श्री गणेश जी का ध्यान योगी एवं अध्यात्म की साधना करने वाले साधक भी करते हैं। जब हम गणेश जी का ध्यान करते हैं तो हमारी श्वास लेने की प्रक्रिया स्वतः लम्बी और गहरी हो जाती है– दूसरे शब्दों में हम गहरा एवं लम्बा श्वास लेते हैं। ऐसा इसलिए हो जाता है क्योंकि श्री गणेश जी की सूण्ड लम्बी और पेट मोटा है। दूसरे हम पेट से श्वास लेते हैं अर्थात् जब हम श्वास लेते हैं तो पेट फूलता है और जब छोड़ते हैं तो पेट सिकुड़ता है। इससे हमारे शरीर में अधिक आक्सीजन जाती है और अधिक मात्रा में आक्सीजन जाने से हमारे इम्यून सैल्स (**Immune Cells**), जो बिमारी फैलाने वाले सैल्स से लड़ते हैं और उन्हें पनपने नहीं देते, को शक्ति मिलती है और वे रोग के कीटाणुओं से लड़ते हैं और उन्हें समाप्त कर देते हैं, यहाँ तक कि कैन्सर–सैल्स को मार डालते हैं। नैचरोपैथ या प्राकृतिक चिकित्सक भी इस बात को मानते हैं कि गहरा श्वास लेने से हमारे शरीर में आक्सीजन की मात्रा अधिक जाती है जिससे हमारा शरीर निरोगी बन जाता है। गहरा श्वास लेने से हमारे शरीर का

Diaphragam (डायफराम) ठीक प्रकार से कार्य करता है और पित्त आदि रोगों से हमें छुटकारा मिलता है।

यदि आप कोई भी काम करते हैं, चाहे वह घर का काम हो, या कोई व्यवसाय, या नौकरी से सम्बन्धित हो, तो आप उसे तब अच्छी प्रकार से कर सकते हैं, जब आप में शक्ति हो। गणेश जी के ध्यान करने से शरीर में आक्सीजन की मात्रा बढ़ जाती है। तब आप में मानसिक एवं शारीरिक शक्ति का अधिकाधिक संचार होने लगता है, जिससे आप प्रत्येक कार्य को सफलता से कर सकते हैं। यदि शरीर में शक्ति कम है, तो कोई भी कार्य कुशलता से करना असम्भव प्राय हो जाता है। कुशलता पूर्वक किये कार्य से ही लक्ष्मी का आगमन होगा और हम अपने व्यवसाय में अधिक से अधिक धनोपार्जन कर सकेंगे। इसीलिए हिन्दू संस्कृति में पहले गणेश जी की पूजा , ध्यान का विधान है और बाद में लक्ष्मी जी का। हमारे शास्त्र कहते हैं कि प्रत्येक व्यक्ति को अपने जीवन में गिनती के श्वास मिलते हैं। इसलिये हम हर रोज आरती में श्री गुरुदेव भगवान से प्रार्थना करते हैं– ऐसी कृपा कीजिये कि कोई श्वास ना खाली जाये। (हर श्वास में आपका स्मरण हो व गुरुमन्त्र का जाप हो)। श्री गणेश जी के ध्यान से हमारा श्वास लम्बा और गहरा हो जाता है, जिसका अर्थ यह हुआ कि एक लम्बा श्वास लेने में छोटे श्वास के मुकाबले लगभग दो गुना समय लगता है। इससे हमारी आयु बढ़ गई क्योंकि हमारे शास्त्रों के अनुसार हमारे जीवन में श्वासों की गिनती निश्चित है। हम इस बात को भली–भाँति जानते हैं कि हिमालय में बैठे कई योगियों की उम्र 500 वर्ष या उससे भी अधिक है, क्योंकि वे अपने प्राण को ब्रह्माण्ड (सहस्रार चक्र) में चढ़ा लेते हैं, और कई–कई दिनों तक श्वास नहीं लेते। कहने का अर्थ है कि श्री गणेश जी का ध्यान करने से हमारी आयु (जीवन–काल) बढ़ जाता है।

श्री गणेश जी का ध्यान करने से (लम्बा व गहरा श्वास लेने से) टेंशन दूर होती है, यह कोई भी व्यक्ति आजमा सकता है। जब भी आपको टेंशन हो, तो लम्बे और गहरे श्वास लें, और आप पायेंगे कि आपको मानसिक शान्ति प्राप्त हो रही है और टेंशन गायब हो गई है। निष्कर्ष यह निकला कि श्री गणेश जी के ध्यान से शारीरिक एवं मानसिक शक्ति में वृद्धि होती है, धन प्राप्त होता है, आयु बढ़ती है, टेंशन दूर होती है और मानसिक शान्ति प्राप्त होती है।

मैं यहाँ एक दो बातें और लिखना चाहता हूँ, जो कि अनुभव की हैं। मेरे पिता जी को ब्लड कैन्सर था और वे अस्पताल में दाखिल थे। ब्लड कैन्सर में खून में (**white blood cells**) सफेद सैल्स बहुत बढ़ जाते हैं और लाल सैल्स (**R.B.C.**) को समाप्त कर देते हैं। मुझे अस्पताल में ही स्मरण हुआ कि श्री गुरुदेव जी इसके लिये शीतली प्राणायाम करवाते थे। मैंने अपने पिता जी को शीतली करने को कहा। एक दिन शीतली करने के पश्चात जब अगले दिन उनका ब्लड का टैस्ट हुआ तो पाया गया कि उनके सफेद सैल्स काफी कम हो गये हैं। रिपोर्ट देख कर डॉक्टरों की टीम हैरान हो गई और उन्होंने मुझ से पूछा कि मैंने उनको कौन सी दवा दी है। मैंने बताया कि मैंने कोई दवा नहीं दी। और डॉक्टर आपस में बात करने लगे कि यह तो, ऐसा कभी होता नहीं है। इस रोग के अतिरिक्त, श्री सद्गुरुदेव भगवान जी के द्वारा बताये, शीतली का प्रयोग मैंने कई उच्च रक्तचाप (**high B.BP.**) के रोगियों पर भी किया। आश्चर्य की बात यह है कि केवल शीतली से सैंकड़ों उच्च रक्त चाप के रोगी बिलकुल ठीक हो

गये। हालाँकि इस लेख का मूल विषय तो श्री गणेश जी का ध्यान और उसके लाभ था लेकिन शीतली की बात इसलिए लिख दी क्योंकि इससे भी कई प्रकार के रोग दूर होते हैं और आयु लम्बी होती है। अब हमें ज्ञात हो गया होगा कि हम श्री गणेश जी को ऋद्धि और सिद्धि प्रदान करने वाला क्यों कहते हैं।

करो रोज गणेश जी का ध्यान।

भगाओ रोग और मिटाओ अज्ञान।।

दालचीनी- एक लाभकारी औषधि

दाल चीनी गर्म मसाला में प्रयोग किये जाने वाला द्रव्य है। हिन्दी में दाल चीनी तथा संस्कृत में इसे दारुसिता कहते हैं।

परिचय- दाल चीनी के पेड़ सिहंल, मालावार, कोचीन सुमात्रा, चीन, जावा आदि देशों में खूब पैदा होते हैं। इसके पत्ते तेज पात की तरह ही होते है। पत्तों को सुखा कर सुगन्धित द्रव्य के रूप में प्रयोग करते हैं। वृक्ष पर अग्रभाग में सफेद रंग के फूल निकलते हैं। गुलाब के फूल की तरह सुगन्ध आती है। फल करौंदे की तरह सफेद व लाल होते हैं। फूल का सत्व या अर्क निकालते हैं। इस वृक्ष की पतली त्वचा ही दाल चीनी कहलाती है।

गुण- दाल चीनी मधुर, चरपरी, कड़वी, सुगन्धित, वीर्य वर्धक, वात पित्त, मुख का शोष तथा तृषा को दूर करने वाली है।

दाल चीनी, हृदय को हितकारी, वायुनाशक, संकोचक रोगोत्पादक जीवाणु नाशक है। औषधि के रूप में सेवन करने पर अफारा, जिह्वा स्तम्भ, ग्रहणी आंतों का सूजन तथा वमन निवारण में प्रयोग किया जाता है।

एन्टीसेप्टिक होने के कारण, इन्जेक्शन में भी प्रयोग किया जाता है। गर्भाशय से रक्त स्राव होने पर दाल चीनी का प्रयोग हितकर है। टी.वी. में इसका इन्जेक्शन दिया जाता है। इसका तेल निकाला जाता है जो नाड़ी संस्थान का Nervous System को ठीक रखने में लाभ कारी होता है। आयुर्वेदिक काढ़ा में चाय के रूप में और औषधियों के साथ मिला कर पेय के रूप में प्रयुक्त होता है। अत: घरों मे गर्म मसालों में इसका भी प्रयोग किया जाता है।

नववर्ष 2017 के शुभावतरण पर त्रिभाषा-रचित

(संस्कृत, अंग्रेजी तथा हिन्दी में) पद्यात्मिका स्वरचनायें

– द्वारका प्रसाद शर्मा, लखनऊ

(संस्कृत भाषायाम्)

सर्वे निजैः कर्मभिरेव बद्धाः, फलं तदीयं प्रियमप्रियं वा ।
भुञ्जामहेऽत्रैव न रमामहे किं, जुगुप्सिवे कर्मणि भूय एव ।।1।।

द्विष्मो वयं किं न प्रभो ! भवद्म्यः, विघ्नो भवानेव विराजतेऽन्तः ।
भूतेषु सर्वेषु तथापि कुर्मः, परोक्षभावेन भवन्निरादरम् ? ।।2।।

सुखं मृग्यमाणा वयं विस्मरामः, सुखं वर्धते तत्तु प्रदीयमानात् ।
भवद्दयातः प्रभवेदियत् प्रभो, करवाणि कर्माणि तवार्पितानि ।।3।।

याचे भवद्भ्यश्च नवीनवर्षे, कृपामियन्तामपि रोचते चेत् ।
यो योऽपि पठितुं प्रयतेत विज्ञः, जीवेच्छतं सुतनुषा, दशासा सुमनसा ।।4।।

(This is in Hindi Verses of Sanskrit Verses)

प्रभो ! बंधे हम सभी कर्म द्वारा, शुभ या अशुभ कर्म–फल भोगते हैं।
"है कर्म कुत्सित" यह जानते भी, वही कर्म क्या हम न करते रहे हैं ।।1।।

प्रभो ! जानते, आप सब में विराजें, नहीं आपसे द्वेष हम कर रहे हैं ।
हैं द्वेष करते किसी व्यक्ति से भी, निरादर न क्या आपका कर रहें हैं ? ।।2।।

रहे खोजते सुख, यही भूल जाते, सुख ही बढ़ेगा, सुख बाँटने पर ।
है कामना हे प्रभो ! आपसे यह, करूँ कर्म भी आपको सामने कर ।।3।।

नया वर्ष आया नयी याचना यह, स्वीकार मेरी प्रभो ! यह भी कर लें ।
रसज्ञ, मर्मज्ञ, सुविज्ञ जो पढ़े, मानी, धनी और शतायु हों वे ।। 4 ।।

May the New Year be a Blissful one

(This is in English Verses of Sanskrit Verses)

Tied are we with the actions performed,
And undergo consequently the results auspicious or otherwise
Knowing the actions contemptibility even,
We go on performing becoming unwise. (1)

We Know O Lord ! you are seated in one and all,
Showing hatred into one, do we not hate you O Lord !
Exhibiting hatred against anyone in person,
Do we not indirectly despise much the God. (2)

Sought for is happiness, but forget we,
Sharing pleasures multiplies the happiness.
I wish Lord ! a boon from yourself,
Whatever should I do, may do experiencing your nearness. (3)

The New Year has dawned and again I beseech,
May this be accepted depending upon your benign Choice.
Be it gone through by anyone whosoever he be,
May beget the life's century, the honours, & wealth as its price. (4)

पं. राधेश्याम शर्मा जी पर सद्गुरुदेव की कृपायें

– अशोक शर्मा, दिल्ली

हमारे पूज्य पिताजी पं. राधेश्याम शर्मा, झाँसी वाले, जिन्हें सभी गार्ड साहब के नाम से जानते हैं, की जीवन ज्योति 90 वर्ष की आयु पूरे होने पर 26 अप्रैल 2016 को श्री प्रभु जी के श्रीचरण कमलों में समाहित हो गयी। मुझे मेरे वरिष्ठ गुरुभाई डॉक्टर विजय सिंह जी ने जोर देकर कहा कि मैं उनके जीवन में घटित सद्गुरुदेव की कृपा–लीलाओं का वर्णन लेख बद्ध करके सिद्धयोग में प्रकाशित करने के लिए दूँ, ताकि अन्य सभी को उससे प्रेरणा मिले।

हमारे बाबूजी के जीवन में अथवा यूँ कहें कि हमारे परिवार में प्रत्येक क्षण गुरुदेव की कृपा अनवरत रूप से बरस रही है, जिसमें से कुछ ही घटनाओं का वर्णन लेख में दिया जा सकता है। सभी कृपाओं का वर्णन तो लगभग मेरे जैसे प्राणी के लिए असंभव है।

बाबूजी का जन्म चैत्र शुक्ल चतुर्दशी संवत् 1983 तदनुसार अप्रेल सन् 1926 को मथुरा जिले के छाता गाँव में पं. नत्थीलाल शर्मा जी के यहाँ हुआ था। हमारे बाऊजी से बड़ी एक बहिन थीं। लेकिन उनके बाद बच्चे जन्म के एक वर्ष के भीतर ही मर जाया करते थे। बाऊजी उनकी आठवीं संतान थे। जन्म के समय बाबूजी अत्यंत कमजोर पैदा हुए थे। उन्होंने दूध पीना भी छोड़ दिया और सभी को इनके जीवित रहने की कोई आशा नहीं थी। तभी किसी ने सलाह दी कि पास के गाँव उमराया में महात्मा जी के पास ले जाओ। उनकी कृपा से शायद बच्चा जी जाये। महात्मा जी के आशीर्वाद से उन्हें जीवन दान मिला। महात्मा जी ने इनका नामकरण राधेश्याम रखा। महात्मा जी ने हमारे बाबा व दादी को नियम बताया कि जब तक तुम्हारी संतान 11 वर्ष की न हो जाये तब तक तुम दोनों कहीं भी बाहर किसी अन्य के यहाँ विवाह, जन्म–मृत्यु के भोज में भोजन नहीं करना। सदैव अपने घर पर ही भोजन करना। जिस नियम का उन्होंने पूरी तरह से पालन किया।

बाऊजी का सारा परिवार आर्य समाजी था। अत: उनके अन्दर आर्य–समाज के ही वैदिक संस्कार थे। वह बाल्यकाल से ही दोनों समय संध्या नियम से करते थे। बाऊजी की 14 वर्ष की आयु में ही हमारे बाबा का देहान्त हो गया। बाऊजी की मिडल तक की शिक्षा गाँव में ही हुई। आगे की पढ़ाई के लिए वह अपने ननिहाल अजमेर चले गये। इण्टर की पढ़ाई के बाद उनकी नौकरी भारतीय जीवन बीमा निगम में क्लर्क के पद पर लग गई। सन् 1952 में बाऊजी की नौकरी रेल्वे में सहायक स्टेशन मास्टर के पद पर लग गई। उन दिनों स्टेशन मास्टर का पद बड़ा ही अच्छा समझा जाता था अत: उन्होंने हमारे ताऊजी (जो कि बाऊजी के ताऊजी के पुत्र थे) के कहने पर रेल्वे ज्वाइन कर ली। सन् 1952 में उनका विवाह हमारी माताजी श्रीमती शान्ती देवी से मथुरा में सम्पन्न हुआ। उनसे हम तीन पुत्र और एक कन्या, चार संतानें हुई। मैं, चि. देवेन्द्र व सौभाग्यवती कृष्णा

हमारे पूज्य पिताजी पं. राधेश्याम शर्मा, झाँसी वाले, जिन्हें सभी गार्ड साहब के नाम से जानते हैं, की जीवन ज्योति 90 वर्ष की आयु पूरे होने पर 26 अप्रैल 2016 को श्री प्रभु जी के श्रीचरण कमलों में समाहित हो गयी। मुझे मेरे वरिष्ठ गुरुभाई डॉक्टर विजय सिंह जी ने जोर देकर कहा कि मैं उनके जीवन में घटित सद्गुरुदेव की कृपा–लीलाओं का वर्णन लेख बद्ध करके सिद्धयोग में प्रकाशित करने के लिए दूँ, ताकि अन्य सभी को उससे प्रेरणा मिले।

हमारे बाबूजी के जीवन में अथवा यूँ कहें कि हमारे परिवार में प्रत्येक क्षण गुरुदेव की कृपा अनवरत रूप से बरस रही है, जिसमें से कुछ ही घटनाओं का वर्णन लेख में दिया जा सकता है। सभी कृपाओं का वर्णन तो लगभग मेरे जैसे प्राणी के लिए असंभव है।

बाबूजी का जन्म चैत्र शुक्ल चतुर्दशी संवत् 1983 तदनुसार अप्रेल सन् 1926 को मथुरा जिले के छाता गाँव में पं. नत्थीलाल शर्मा जी के यहाँ हुआ था। हमारे बाऊजी से बड़ी एक बहिन थीं। लेकिन उनके बाद बच्चे जन्म के एक वर्ष के भीतर ही मर जाया करते थे। बाऊजी उनकी आठवीं संतान थे। जन्म के समय बाबूजी अत्यंत कमजोर पैदा हुए थे। उन्होंने दूध पीना भी छोड़ दिया और सभी को इनके जीवित रहने की कोई आशा नहीं थी। तभी किसी ने सलाह दी कि पास के गाँव उमराया में महात्मा जी के पास ले जाओ। उनकी कृपा से शायद बच्चा जी जाये। महात्मा जी के आशीर्वाद से उन्हें जीवन दान मिला। महात्मा जी ने इनका नामकरण राधेश्याम रखा। महात्मा जी ने हमारे बाबा व दादी को नियम बताया कि जब तक तुम्हारी संतान 11 वर्ष की न हो जाये तब तक तुम दोनों कहीं भी बाहर किसी अन्य के यहाँ विवाह, जन्म–मृत्यु के भोज में भोजन नहीं करना। सदैव अपने घर पर ही भोजन करना। जिस नियम का उन्होंने पूरी तरह से पालन किया।

बाऊजी का सारा परिवार आर्य समाजी था। अतः उनके अन्दर आर्य–समाज के ही वैदिक संस्कार थे। वह बाल्यकाल से ही दोनों समय संध्या नियम से करते थे। बाऊजी की 14 वर्ष की आयु में ही हमारे बाबा का देहान्त हो गया। बाऊजी की मिडल तक की शिक्षा गाँव में ही हुई। आगे की पढ़ाई के लिए वह अपने ननिहाल अजमेर चले गये। इण्टर की पढ़ाई के बाद उनकी नौकरी भारतीय जीवन बीमा निगम में क्लर्क के पद पर लग गई। सन् 1952 में बाऊजी की नौकरी रेल्वे में सहायक स्टेशन मास्टर के पद पर लग गई। उन दिनों स्टेशन मास्टर का पद बड़ा ही अच्छा समझा जाता था अतः उन्होंने हमारे ताऊजी (जो कि बाऊजी के ताऊजी के पुत्र थे) के कहने पर रेल्वे ज्वाइन कर ली। सन् 1952 में उनका विवाह हमारी माताजी श्रीमती शान्ती देवी से मथुरा में सम्पन्न हुआ। उनसे हम तीन पुत्र और एक कन्या, चार संतानें हुई। मैं, चि. देवेन्द्र व सौभाग्यवती कृष्णा अभी मौजूद हैं। सबसे छोटे पुत्र श्री राम दत्त को आनन्दकन्द श्री सद्गुरुदेव जी ने सन् 1973 में दिव्य सद्गति प्रदान की। उस कृपा का वर्णन 1974 के अप्रैल के सिद्धयोग के अंक में गुरुदेव ने ' अद्भुत बालक पर अद्भुत कृपा ' शीर्षक से प्रकाशित कराया था। हो सका तो उसे पुनः प्रकाशित करने का आचार्य दासलाल जी से निवेदन करूँगा। क्योंकि मरने के बाद जीव की गुरुदेव की कृपा से क्या गति होती है, इसका प्रत्यक्ष प्रमाण वह घटना है, जो सभी के लिए पठनीय है और प्रेरणादायी है।

सन् 1963–64 में हमारी माताजी को टी.बी. हो गयी थी। जिसका इलाज वृन्दावन के टी.बी. सैनिटोरियम में चला था। टी.बी. से उनके फेफड़े गल गये थे। डाक्टरों ने उनको आपरेशन के लिए कह दिया था। माताजी को बिरला मंदिर, मथुरा में भगवान सुदर्शन चक्रधारी श्रीकृष्ण जी की मूर्ति के रूप में भगवान ने स्वप्न में दर्शन दिये और वह स्वस्थ होती चली गयी तथा आपरेशन नहीं करना पड़ा।

इस तरह इनके जीवन में प्रतिदिन ऐसा अनुभव होता था कि कोई अदृश्य सत्ता इनके जीवन के घटना क्रम को संचालित कर रही है। माताजी के संस्कार विशुद्ध वैष्णव सनातन धर्म के थे। अतः बाबूजी भी अब मूर्तिपूजा करने लगे थे।

सन् 1965 में इनके जीवन में ब्रह्मर्षि गीतानन्द सरस्वती जी के दर्शन हुए। उनके दर्शन के पश्चात् हमारे घर में धन–धान्य वस्त्रादि की कमी न रही। महात्मा जी ने इनके मनोभावों को देखकर हनुमान जी का एक मंत्र और सूर्य को अर्घ्य देने का मंत्र का उपदेश किया और साथ में कहा कि तुम्हें 'तारक मंत्र' अर्थात् 'बीज मंत्र' जो श्वाँस–प्रश्वाँस से जपा जाता है, उसे गुरुदेव समय आने पर देंगे। स्वप्न में हमारी माताजी को उन्होंने सवाँई आश्रम की गुफा, परम तेजोमय गुरुभवन गौशाला और सारा आश्रम यह कहकर दर्शन कराया कि मुनिया यह हमारी गुफा है।

सन् 1971 जनवरी में ब्रह्मर्षि गीतानन्द सरस्वती जी का देहान्त हो गया। हम सभी पर मुसीबतों का पहाड़ सा टूट पड़ा। जीजी (हमारी माता जी को) पुनः टी.बी. हो गई। और इस बार दोनों फेफड़े प्रभावित थे। झाँसी के रेल्वे अस्पताल में इलाज चल रहा था। डॉ. शाण्डिल्य जो चेस्ट रोग के विशेषज्ञ थे, उनके अनुसार आपरेशन किया जाना था जो रेल्वे के बम्बई स्थित अस्पताल में ही सम्भव था। माताजी की हालत दिन पर दिन बिगड़ती जा रही थी। जीजी की दृढ़ धारणा थी कि यह जीवन यदि किसी सन्त की कृपा हो जाये तभी बच सकेगा अन्यथा मृत्यु अवश्यम्भावी है।

नवम्बर 1971 में आनन्दकन्द श्री सद्गुरुदेव योगिराज चन्द्रमोहन जी महाराज का योग–प्रचार कार्यक्रम झांसी में खण्डेराव गेट के बाहर साधना मंदिर में आयोजित हुआ। इस कार्यक्रम के इश्तहार की एक प्रति लेकर बाबूजी घर पर आये और जीजी को बताया कि ये योगिराज महात्मा जी योग क्रियाओं के द्वारा कठिन से कठिन साध्य असाध्य रोगों का इलाज करते हैं। हो सकता है इन्हें भगवान ने तुम्हारे लिए ही कृपा करने के लिए भेजा हो। अतः कल हम उन्हें तुम्हें वहाँ दिखाने ले चलेंगे। मैं छुट्टी लेकर आ गया हूँ। कल सवेरे इनके पास चलना है।

दूसरे दिन जीजी–बाऊजी और सभी जन साधना मन्दिर पहुँच गये। जीजी ने सभी के लिए भोजन बनाकर रख लिया था कि पता नहीं वहाँ कितना समय लगे अतः भोजन का प्रबन्ध कर लिया था। जब हम वहाँ पहुँचे तब तक गुरुदेव भगवान भोजन करके विश्राम के लिए चले गये थे। हमारे बड़े गुरुभाई ईश्वरी प्रसाद खड्डर (जिन्हें सभी बाबा कहते थे), कुछ गुरुभाईयों के साथ साधना–मंदिर के बाहर चट्टान पर बैठ कर वार्तालाप कर रहे थे। बाऊजी ने बाबा से अपने आने का कारण बताते हुए कहा कि माताजी का टी.बी. का इलाज महात्मा जी से करवाना है। बाबा ने

उत्तर दिया कि रोगों का इलाज सवेरे प्रभुजी की आरती–पूजन और गीता पाठ के बाद लगभग 8 बजे होता है। तुम लोग देर से आये हो,अत: अब कल आना। यह कहकर बाबा फिर गुरुभाईयों के साथ वार्तालाप में लग गये। जीजी–बाऊजी और बच्चों ने साथ में जो भोजन लाये थे वह खाया। और वहीं बैठे रहे। कुछ समय पश्चात् बाबा का ध्यान हमारी ओर गया और उन्होंने कहा– अरे ! रोगों का इलाज कल होगा। तुम लोग घर नहीं गये। अब अपने घर को चले जाओ।

हमारी जीजी रोगी होने कारण अत्यंत कमजोर थीं उन्हें बाबा की बात पर थोड़ा गुस्सा आ गया और उन्होंने कड़ककर कहा कि 'रोग का इलाज कल होगा यह माना, पर क्या महात्मा जी के दर्शन पर भी कोई पाबन्दी है।' यह सुनते ही खड्डरबाबा ने सबको छोड़कर तुरन्त जीजी का हाथ पकड़कर उन्हें साधना मंदिर के भीतर जहाँ गुरुदेव कक्ष में विश्राम कर रहे थे वहाँ स्वयं पकड़कर ले गये। गुरुदेव तभी विश्राम से उठकर पलंग पर बैठे ही थे। बाबा ने निवेदन किया ' प्रभो इस बहिन को क्षयरोग है।' गुरुदेव ने सुनते ही कहा लाओ पुष्प प्रशाद और गुलाब का एक पुष्प को शक्तिपात करके स्वयं अपने हाथ से जीजी को मुँह में खिला दिया। और उपदेश किया मुनिया हमारा जब तक यहाँ प्रोग्राम है। तुझे सवेरे–शाम नित्य आना है। प्रभुजी की आरती में शामिल होना है। और चाहे कितने भी धक्के लगें पर सबसे आगे खड़े होकर प्रभुजी के जल के छींटे लेने हैं। हमारी आज्ञा का पालन करना, प्रभुजी कृपा करेंगे और तू बिल्कुल ठीक हो जायेगी। '

हम सभी ने प्रणाम किया। खड्डर बाबा ने बाऊजी जीजी को कहा कि तुम्हें नहीं पता कि इसने 'गुरुदेव ने' तुम्हें क्या दे दिया है, मैं इसको कुछ–कुछ जानता हूँ। बाबा ने तत्पश्चात् हमारे बाबूजी से पूरा परिचय प्राप्त किया अर्थात् क्या करते हो ? कौन जाति से हो ? इत्यादि–इत्यादि। बाबा ने पूरी जानकारी लेकर जोर देकर कहा ' बामन क्यों वृथा समय खोते हो गुरुदीक्षा लेलो और अपने जीवन को धन्य बनालो। वह दीक्षा पर जोर देते रहे। बाऊजी– जीजी घर आ गये। बाऊजी ने घर के मंदिर में बैठकर रामचरितमानस को खोलकर प्रश्न श्लोका से बार–बार प्रश्न किया कि हमें दीक्षा लेनी चाहिए या नहीं। प्रत्येक बार सकारात्मक उत्तर मिला। क्योंकि मन में यह भाव था कि हम ब्रह्मर्षि गीतानन्द सरस्वती जी को गुरुमानकर उनके बताये हुए मंत्र का जप करते हैं। अब पुन: दीक्षा लेना उचित है या नहीं। सकारात्मक उत्तर रामचरित मानस से पाकर बाऊजी–जीजी ने सभी आवश्यक सामग्री जुटाई और 15 नवम्बर 1971 को गुरुदीक्षा लेली।

बाबा के निर्देशानुसार हनुमान जी एवं गोपाल जी के श्री विग्रह को सीपरी–बाजार स्थित श्रीकृष्ण मंदिर में सौंप आये। और प्रतिदिन श्री प्रभुजी की आरती–पूजन घर में प्रारम्भ हो गया। गुरुदेव के उपदेशानुसार जीजी को सूत्र नेति, नासिका से दुग्धपान और जीवन–तत्व कराया गया। जीवन–तत्व के दौरान हमने प्रत्यक्ष देखा कि उन्हें दिव्य प्राणायाम स्वत: होते थे। कभी कोई अंग प्राणवायु से फूल जाता तो कभी कोई अंग। प्राण–वायु लहर की तरह उनके शरीर में उठ–उठ कर चलती थी। मात्र 8–10 दिन में ही वह पूर्ण स्वस्थ हो गई थीं। डॉक्टर भी आश्चर्य चकित रह गये थे कि उन्हें कुछ समझ नहीं पड़ रहा था कि क्या चमत्कार हुआ कि दोनों फेफड़े पूरी तरह ठीक हो गये।

श्री सत्गुरुदेव की कृपा

श्याम मनोहर श्रीवास्तव, ललितपुर

जुलाई सन् 1981 गुरु पूर्णिमा के दिन की बात है। मुझे अपने परिवार के साथ गुरु पूर्णिमा पर गुरु पूजन हेतु आश्रम जाना था। ललितपुर से आगरा जाते बीच में ग्वालियर पड़ता है जहाँ हमारे छोटे भाई एवं दोस्त एवं गुरुभाई श्री अरुण गोलवलकर को भी आश्रम जाना था इसलिए मैं अपने परिवार के सहित गुरु पूर्णिमा के एक दिन पूर्व ग्वालियर आ गये तथा दूसरे दिन सब लोग इकट्ठे होकर ग्वालियर से आगरा जाने के लिए स्टेशन पहुँचे। स्टेशन पर बहुत भीड़ थी पैर रखने के लिए जगह नही थी। गाड़ियों में बहुत भीड़ चल रही थी चढ़ना मुश्किल था। हम लोगों ने आगरा के टिकिट ले लिये थे। परन्तु भीड़ होने के कारण हम लोगों ने आश्रम जाना कैंसिल कर दिया और आगरा के टिकिट वापस करके ललितपूर वापस लौटने के लिए टिकिट ले लिये। मेरा दोस्त जो अपने परिवार के साथ एवं मेरे छोटे भाई अपने ग्वालियर वाले घर वापिस लौट गये। अब स्टेशन पर मैं अपने परिवार के साथ ललितपुर जाने वाली गाड़ी का इन्तजार कर रहे थे। उसी समय ग्वालियर स्टेशन पर अपने गुरु भाई जो झाँसी में रहे इं. श्री राम बाबू गुप्ता जो अकेले थे उनसे जय गुरुदेव हुई तथा पूछने लगे क्या आश्रम चल रहे हो तो मैंने उपरोक्त सभी बातें बतलाई और कहा कि आश्रम न जाकर वापिस ललितपुर जा रहा हूँ टिकिट भी ललितपुर के ले आया। मैंने कहा अब बहुत देर हो चुकी है यदि आश्रम जायेंगे तो पूजन नहीं मिल पायेगा तो श्री गुप्ता जी ने कहा कि तुम आगरा के टिकिट ले आओ और आश्रम चलो आगरा से आश्रम जाने की व्यवस्था है समय से पहुँच जायेंगे। मैं आगरा के टिकिट लेकर आया और श्री गुप्ता जी के साथ गाड़ी में बैठकर आगरा आ गया। आगरा स्टेशन पर भाई श्री गुप्ता जी की कार आ गई और हम लोग समय से आश्रम पहुँच गये तथा पूजन आदि किया।

गुरुदेव भगवान जिसको बुलाना चाहते हैं वही उस दरवार तक पहुँच सकता है। ग्वालियर वाले भाइयों को नहीं दर्शन देना होगा इसलिए वह स्टेशन आने के बाद भी लौट गये।

●●●

'सब प्रकार से परमात्मा के ही शरण'

लज्जा, भय, मान, बड़ाई और आसक्ति को त्याग कर एवं शरीर और संसार में अहंता, ममता से रहित होकर केवल एक परमात्मा को ही परम आश्रय, परमगति और सर्वस्व समझना तथा अनन्य भाव से अतिशय श्रद्धा, भक्ति और प्रेमपूर्वक निरन्तर भगवान् के नाम, गुण, प्रभाव और स्वरूप का चिन्तन करते रहना एवं भगवान् का भजन, स्मरण रखते हुए ही उनके आज्ञानुसार कर्तव्यकर्मों का निःस्वार्थ भाव से केवल परमेश्वर के लिए आचरण करना यह 'सब प्रकार से परमात्मा के ही शरण' होना है।

खेल – खेल में बात–बात में शक्ति पात

जगमन्दर दास

योग योगेश्वर गुरुदेव के श्री चरण कमल मुझे वर्ष 1957–58 में प्राप्त हुए थे। उसी समय से उनकी अनुपम योग–शक्ति के चमत्कार आज तक देखने, सुनने और स्वयं के अनुभव में आ रहे हैं। किस प्रकार शक्ति पात करके वे अन्तः चक्षु खोल परम प्रभु के दर्शन कराते और अभी तक करा रहे हैं।

जब कोई छोटा बालक उनके पास आता, उसे वे बड़े प्रेम से अपनी गोद में बैठा, कभी अपनी दाढ़ी से स्पर्श कराते और कभी–कभी अट्टे–बट्टे का खेल खेला करते। बच्चे के हाथ को पकड़कर बगल तक स्पर्श करते जाते थे। कोई है ऐसा व्यक्ति जो यह समझता कि कितनी अमूल्य निधि वे अपनी छोटी सी क्रिया द्वारा उस नन्हे से बालक को प्रदान कर रहे हैं। जैसे किसी रोगी को इंजैक्शन लगाकर उसको चिकित्सक शक्ति करता है, ठीक उसी तरह वे अपने प्यारे को शक्ति दे निहाल करते थे। मैंने बहुत दिनों तक तो विनोद मात्र ही समझा, परन्तु कुछ दिन बाद यह समझ लिया कि वे उसके उज्जवल भविष्य के लिए उसे अपनी अनुपम कृपा कर दान दे रहे हैं, जिसका परिणाम बाद में सामने आयेगा।

सहारनपुर में निवास करते हुए मैं अक्सर सभी भाई–बहिनों के पास आता–जाता रहता हूँ। एक दिन मैं भाई जी मतीलाल के यहाँ गया था। प्रभु चर्चा चलते उनके लड़के राम ने अपनी नीलकंठ जाने की इच्छा दर्शाते हुए ऋषिकेश " योग–साधन आश्रम " में रुकने की व्यवस्था के बारे में पूछा। मैंने उससे कहा " बेटा व्यवस्था सब है परन्तु तुम्हे वहाँ कोई नहीं जानता है, अतः तुम मेरा पत्र लेते जाना तो तुम्हें वहाँ ठहरने या रुकने में कोई कठिनाई नहीं आयेगी। मैंने एक सलाह दी कि तुम आश्रम जाते समय रुकना और श्री प्रभु जी के चरणों में अपनी पवित्र कामना को सफल बनाने की प्रार्थना कर आगे जाना। उसने मेरी बात को स्वीकार कर लिया। जब वह आश्रम पहुँचा तो वहाँ श्री प्रभुजी की आरती हो रही थी। उसने भी प्रसाद ग्रहण किया और अपनी यात्रा की सफलता की याचना कर भगवान नीलकंठ जी की यात्रा आरम्भ कर दी। उसने मुझे अपने मुख से सुनाया कि जब–जब वह पहाड़ की दुर्गम चढ़ाई चढ़ता और जरा आँखें बन्द करता तो उसे श्री नीलकंठ महादेव के दर्शन होते। उसने ध्यान में अनन्त शिवलिंगों के दर्शन लाभ किए और जब तक वह अन्तिम स्थान पर नहीं पहुँचा श्री प्रभु जी उस पर अपनी कृपा करते रहे। मैंने उसे समझाया कि यही उन सर्वशक्तिमान की दयालुता है।

दूसरी बार, जब मैं उसके घर गया, तो मेरे पास आने को तैयार था। मुझे देखकर सारे घर वाले हर्षित हो उठे।

जैसे ही मैं बैठा, उसने अपनी राम कथा मुझे सुनानी इस प्रकार आरम्भ कर दी " मन्त्री जी,

क्या बताऊँ, रात मुझे ऐसा स्वप्न दिखायी दिया जहाँ श्री गुरुदेव जी की पत्थर की मूर्ति स्थापित है उसी दिव्यमूर्ति के साथ एक स्त्री बात कर रही है। वह मूर्ति रूपी श्री गुरुदेव उससे खूब बात कर रहे हैं और उसकी बातों का उत्तर दे रहे हैं। सारी बातें इस समय मुझे याद नहीं। हाँ, उस मूर्ति के मुख से यह सुना कि मैं ब्रह्म हूँ फिर थोड़ी देर बाद वह स्त्री वहाँ से चली गई और मैं उनके श्री चरणों में गिर पड़ा। मैंने कहा कि मैं आपके चरणों में समर्पित हूँ। श्री गुरुमूर्ति ने कहा– तुम समर्पित नहीं हो, केवल प्रणाम कर रहे हो।" मैंने फिर कहा– " मैं आपकी शरण में हूँ " हाँ ! किन्तु समर्पित नहीं। मैंने आगे कहा– कि आप मुझे अपने पास ही रखने की कृपा करें। यह बातें चल ही रही थीं कि मेरी माँ जो भी ध्यानी है और उन्हें श्री प्रभु जी के ध्यान दर्शन होते रहते हैं। वहाँ आई और मुझे उनके श्री चरणों की पावन गोद से वंचित कर अपने साथ ले गई।

मुझे थोड़ा विस्मय हुआ कि यह बालक सत्संग में आता नहीं और उन दया निधि का प्यार और कृपा को पा रहा है। बातों–बातों में उसने कहा कि जब मैं छोटा था तो श्री गुरुदेव जी महाराज मेरे हाथ को पकड़कर अट्टे–बट्टे का खेल किया करते थे। और बहुत लाड़ लड़ाते थे।

मुझे तुरन्त मेरी बुद्धि ने समझाया कि यह उन परम प्रभु की शक्तिपात का नतीजा है और जो वह बात–बात में खेल – खेल में किया करते थे।

उनकी लीला को कौन जाने वह किस प्रकार और क्यों क्या–क्या करते थे ? छुपे हुए वस्त्रों में वे साक्षात् परं ब्रह्म थे। उनके श्री चरणों में कोटि–कोटि प्रणाम करता हुआ मैं अपनी बात को विश्राम देता हूँ और उनसे प्रार्थना करता हूँ कि वे दया के सागर हम सब पर अपने श्री चरणों का प्रेम प्रदान करने की कृपा करते रहें।

●●●

चक्षु सम्पन्न व्यक्ति देखेंगे कि भारत का ब्रह्मज्ञान समस्त पृथ्वी का धर्म बनने लगा है। प्रातःकालीन सूर्य की अरुण किरणों से पूर्व–दिशा आलोकित हो उठी है, परन्तु जब वह सूर्य मध्यान्ह–गगन में प्रकाशित होगा, उस समय उसकी दीप्ति से समग्र भू–मण्डल दीप्तिमय हो जायेगा।

ध्यान द्वारा यथार्थ स्थिति का बोध

यदि अपवाद को अलग कर दिया जाय तो पहाड़ों पर रहने वाले स्त्री–पुरुष सामान्यतया सत्यवादी, मेहनती, सरल एवं विश्वासी होते हैं। अधिकांशतः आस्तिक एवं आध्यात्मिक भी होते हैं। इन्हीं पहाड़ों के निवासी हमारे एक गुरुभाई दम्पत्ति हैं, जिनका नाम श्री आर.सी. ठाकुर है। दुनिया के प्रपंचों से दूर यह दम्पत्ति अनन्य ही गुरु चरणानुरागी हैं। सन् अस्सी के दशक का प्रसंग है। महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज के अवतारोत्सव श्री चैत्र रामनवमी पर, योग प्रशिक्षण केन्द्र श्री सिद्ध गुफा सवांई धाम पर, जाना तो ये सपत्नीक चाहते थे परंतु कुछ कार्य ऐसा आ गया कि इनकी धर्मपरायणा पत्नी साथ नहीं जा सकीं एवं ये अकेले ही श्री सवाई धाम पहुँचे श्री सवांई धाम पर पहुँच कर इन्होंने आराध्यदेव योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के युगल कमल चरणों में ज्योंही प्रणाम निवेदित किया, श्री आराध्यदेव जी ने आशीर्वाद देने के बाद कि – 'लल्ला! अमुक कमरे में ठहर जाओ। उस कमरे में श्री दयानन्द नाम के एक महात्मा तथा महर्षि दयानन्द सरस्वती सम्प्रदाय के एक महात्मा और ठहरे हुए हैं।'' आदरणीय श्री आर.सी. ठाकुर जी, उस कमरे में जाकर अपना सामान रखे एवं अपना बिस्तर लगा लिये। वे उस कमरे में आनन्द से निवास करने लगे। श्री दयानन्द जी भी महर्षि दयानन्द सरस्वती सम्प्रदाय के ही महात्मा थे। चूँकि श्री दयानन्द जी दोनों आदमियों से परिचित थे अतः उन्होंने इन दोनों लोगों का आपस में परिचय कराया। हमारे आदरणीय गुरुभाई श्री आर.सी. ठाकुर जी का परिचय कराते हुए उन्होंने उस महात्मा से कहा कि – 'ये, योगिराज श्री चन्द्रमोहन जी महाराज के कृपापात्र एवं ध्यानाभ्यासी बच्चे हैं तथा उस महात्मा का परिचय कराते हुए श्री आर.सी. ठाकुर से बतलाये कि– ये महर्षि दयानन्द सरस्वती सम्प्रदाय के बड़े ही विद्वान एवं प्रचारक हैं।'' आपने लगभग सभी ग्रंथों का अध्ययन एवं मनन किया है तथा इनकी धार्मिक ग्रंथों पर बहुत अच्छी पकड़ है।' आदरणीय श्री आर.सी. ठाकुर जी ने आराध्यदेव की चरणशरण ग्रहण करने से पूर्व योगिराज श्री विवेकानन्द जी के अनेकानेक ग्रंथों एवं पुस्तकों का अध्ययन किया था तथा इस कारण इनका उस तरफ (श्री विवेकानन्द जी एवं उनकी साधना पद्धति की तरफ) आध्यात्मिक झुकाव अधिक था। महात्मा दयानन्द जी ने कहा कि ''और सब तो ठीक है परंतु आपके गुरुदेव मूर्ति एवं फोटो पूजक हैं, यही बात गलत है। शेष सभी कार्य तो ये ठीक ही कर रहे हैं। यही इनका एक कार्य गलत है।'' आदरणीय भाई श्री आर.सी. ठाकुर जी ने उनके विचारों का खण्डन किया एवं कहा कि ''हमारे गुरुदेव में कोई शंका करने की गुंजाइश ही नहीं है। ये पूर्ण योगी एवं गलत–सही तथा किंतु–परंतु की परिधि से बाहर स्थित हैं। अतः इनके किसी कार्य में गलती देखना या दोष निकालना सर्वथा अनुचित है।'' आदरणीय भाई जी का यह उत्तर सुनकर वह महात्मा श्री दयानन्द निरूत्तर हो गया। कुछ देर बाद उसने प्रश्न किया कि– ''अब आप यह बताइये कि स्वामी विवेकानन्द बड़े योगी हैं या आपके गुरुदेव?'' यह बड़ा ही कठिन प्रश्न था, दो योगियों की आध्यात्मिक शक्ति का आंकलन करना। अतः आदरणीय भाई श्री आर.सी. ठाकुर जी ने कहा कि– 'इस प्रश्न का उत्तर अभी तत्काल देने की स्थिति

में नहीं हूँ, बिना ठोस अनुभव के कुछ कहना गलत रहेगा। आपके प्रश्न का उत्तर मैं अनुभव के आधार पर कुछ दिन बाद दूंगा।' ये महाप्रभु जी के अवतारोत्सव सप्तमी, अष्टमी और नवमी के बाद भी दो दिन आश्रम पर रूके रहे। इनके वापस लौटने वाले दिन श्री गुरुदेव भगवान ने त्रिभुवन वंद्य महाप्रभु श्री रामलाल जी महाराज की आरती की एवं उसके बाद श्रीमद्भागवत्गीता के दो अध्यायों का पाठ कराये एवं आदेश दिया कि – ''जो जहाँ है वहीं ध्यान में बैठ जाय। जिनका ध्यान नहीं लगता वह उपांसु विधि से अपने गुरुमंत्र का जप करे। जिसने अभी तक योगदीक्षा नहीं ली है वह पंचाक्षरी मंत्र (ॐ नमः शिवाय) का जप करे।' इतना कहकर आराध्यदेव जी अपने स्थान से उठे एवं आश्रम के अन्य कार्यक्रमों में लग गये।

आदरणीय भाई जी ध्यान करने लगे तो वही प्रश्न बार–बार आ रहा था कि हमारे गुरुदेव बड़े है या स्वामी विवेकानन्द, जिन्होंने अल्पायु में ही देश विदेश में योग एवं आध्यात्म विद्या का धुंआधार प्रचार किया। यह विचार मन में आते ही इनका ध्यान लग गया एवं श्री गुरुदेव भगवान का दर्शन होना आरम्भ हो गया। कुछ समय पश्चात् श्री गुरुदेव भगवान का दिखना बंद हो गया एवं श्री गुरुदेव के स्थान पर एक छोटा प्रकाश का गोला दिखना आरम्भ हो गया। प्रकाश का वह गोला बढ़ते–बढ़ते अखण्ड मण्डलाकार हो गया एवं उसमें से 'ओंकार' की लम्बी ध्वनि सुनायी देनी आरम्भ हो गई तथा फिर उसी अखण्ड मण्डलाकर गोले में से 'ओंकार' की एक मोटी किरण निकलनी आरम्भ हुई एवं उसके साथ 'ओंकार' की ध्वनि भी साथ–साथ ही थी जो लच्छी रूप तार की शक्ल में इनके ह्रदय में आकर समाहित होने लगी। एक बार 'ओंकार' निकल कर अभी लगभग एक फुट की लच्छी बनाते हुए इनके ह्रदय की तरफ बढ़ती, तब तक दूसरा 'ओंकार' शब्द रूपी लच्छी बनना शुरू हो जाता एवं उसके एक फुट आगे बढ़ते ही अगला 'ओंकार' शब्द उस प्रकाशपुंज से निकलता रहा एवं सभी क्वायल रूप में बनकर इनके ह्रदय में समाहित होते रहे। यह दृश्य काफी समय तक इन्हें दिखलायी देता रहा। फलस्वरूप इन्हें अत्यधिक आनन्द की अनुभूति होती रही। श्री मद्भगवतगीता के आठवें अध्याय का तेरहवाँ श्लोक है कि

ओमित्येकाक्षरं ब्रह्म व्याहरन्मामनुस्मरन्।
यः प्रयाति त्यजन्देहं स याति परमां गतिम्।।

अर्थात् ॐ इस एक अक्षर रूप ब्रहम को उच्चारण करता हुआ और उसके अर्थ स्वरूप मुझ ब्रहम का चिन्तन करता हुआ, जो शरीर को त्याग कर जाता है, वह पुरुष परमगति अर्थात् मुझको ही प्राप्त होता है। मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि ओंकार ब्रहमस्वरूप है, अतः ब्रहम से ही ओंकार शब्द का उच्चारण हो रहा है। इसको ज्यादा सरल एवं सुबोध भाषा में इस प्रकार समझा जा सकता है कि मेरे गुरुदेव योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज पूर्ण ब्रहम हैं और यही कारण है कि उनके अखण्ड मण्डलाकार स्वरूप से 'ओंकार' अनवरत निकल रहा था। ऐसा हमारे श्री गुरुभाई जी को दृष्टिगोचर हुआ। इस प्रकार हमारे इस भाई जी को स्पष्ट ज्ञान हो गया कि हमारे आपके गुरुदेव पूर्ण ब्रह्म हैं।

इसी साल आदरणीय भाई श्री आर.सी. ठाकुर जी को कलकत्ता शहर जाना पड़ा। संयोगवश

जहाँ ये रूके थे, उसी के बिल्कुल नजदीक महर्षि दयानन्द सरस्वती सम्प्रदाय का वैदिक धर्म का प्रचार कार्यक्रम चल रहा था। सायंकाल आदरणीय श्री आर.सी. ठाकुर जी उस कार्यक्रम को उत्सुकतावश देखने गये। उस कार्यक्रम के मुख्य प्रचारक एवं वक्ता महाराज निरंजन सरस्वती जी थे, जो उस समय जगन्नाथ पुरी के शंकराचार्य भी थे। वहीं पर हमारे भाई जी की मुलाकात ब्रह्मचारी श्री दयानन्द सरस्वती जी से हुई। इन दोनों लोगों में आध्यात्मिक एवं सांसारिक चर्चायें भी हुई। ब्रह्मचारी श्री दयानन्द जी ने पूछा 'यहाँ कैसे आना हुआ?' आदरणीय भाई जी ने उत्तर दिया – 'भाई साहब! कुछ सांसारिक कार्य से यहाँ (कलकत्ता) आया था तो पता चला कि यहाँ आपके सम्प्रदाय का प्रचार कार्यक्रम चल रहा है, आज आया तो काफी आनन्द आया।' श्री दयानन्द जी ने परामर्श दिया कि 'आप मुख्य आचार्य जी से मिलने का कष्ट करें, वह आपके रहने की व्यवस्था यहीं करा देंगे, ऐसी हमें आशा है।' उस दिन के सायंकालीन कार्यक्रम के बाद आदरणीय भाई जी, महात्मा एवं मुख्यवक्ता परम आदरणीय श्री निरंजनदेव सरस्वती जी महाराज से मिले एवं उन्हें प्रणाम निवेदित किया। उन्होंने भाई जी से प्रश्न किया कि – 'कहाँ से आये हो?' आदरणीय भाई जी ने उनसे निवेदित किया कि 'मैं योग योगेश्वर श्री चन्द्रमोहन जी महाराज का शिष्य हूँ, कुछ सांसारिक कार्यवश कलकत्ता आया हूँ तथा आपके इस कार्यक्रम स्थल से थोड़ी दूर होटल में रूका हुआ हूँ। टहलते हुए जा रहा था तो वेद ध्वनि सुनायी दी, फलस्वरूप चलते हुए यहां आ गया एवं यहाँ हमें बड़ा मनोहारी लगा। परम आदणीय श्री निरंजन देव जी महाराज, अन्तर्जगत के अभ्यासी थे अतः हमारे आपके गुरुदेव भगवान को खूब अच्छी प्रकार से जानते थे। उन्होंने पूछा कि – 'यहाँ कितने दिन का कार्य है।' आदरणीय भाई जी ने उत्तर दिया कि 'अभी तीन दिन का कार्य है।' श्री निरंजन देवजी महाराज ने कहा कि 'अभी जिस होटल में रूके हो, वहाँ चले जाओ एवं अपना सब सामान लेकर यहाँ आ जाओ। यही कमरा नम्बर अमुक में अपना बिस्तर लगा लो। दिन के समय अपना कार्य करो तथा प्रातः तथा सायंकाल यहाँ के प्रचार का आध्यत्मिक लाभ उठाओ। तुम्हारे भोजन की व्यवस्था इसी कार्यक्रम के साथ रहेगी।' इसके साथ ही उन्होंने अपने एक अनुयायी को आदेश दिया कि 'जब मैं प्रातःकाल अपनी पूजा आरम्भ करूं, तो इनको हमारे कमरे में लेकर आ जाना।' इसके बाद आदरणीय भाई जी ने उन्हें प्रणाम निवेदित किया और उन्होंने आदेश दिया – 'अब जाओ। अपने कमरे में होटल से लाकर अपना सामान रखो और आराम करो।'' आदरणीय भाई जी ने अपना सब सामान होटल से लाकर उस कमरे में रखा जो उनको रहने के लिए बतलाया गया था। उस कमरे में जब वे अपना सामान रख रहे थे, तभी ब्रह्मचारी श्री दयानन्द जी भी उस कमरे में पहुँच गये एवं बोले कि 'चलिये अच्छा हुआ, मैं भी इसी कमरे में रूका हुआ हूँ।'

(क्रमशः)

भगवत्तत्त्व–एक विवेचन

रवीन्द्र नाथ

मनुष्य अपनी उन्नति और पारलौकिक कल्याण के लिये जिस तत्व या शक्ति का भजन–पूजन करता है, उसका नाम भगवान है। भगवान शब्द की उत्पत्ति 'भज सेवायाम्' धातु से हुई है। भजन में सेवा की प्रधानता है। स्पष्टतया, जिस शक्ति के सम्मुख साधक आत्मसमर्पण कर उनका सेव्य के रूप में पूजन–अर्चन करता है, वह शक्ति उसके लिये भगवान है। ब्रह्म का वह रूप, जिससे जगत् का पालन–रक्षण होता है, वह तत्व भगवत्तत्त्व है।

सृष्टि की उत्पत्ति के पूर्व जो चेतनतत्व विद्यमान था, उसे ब्रह्म नाम से सम्बोधित किया जाता है। ब्रह्म का गुण है– बृहत्, वृद्धि एवं विशालता। जिस तत्व में सब कुछ परिव्याप्त हो जाये अथवा जिससे सब कुछ व्याप्त हो रहा है या जो सब में व्याप्त है, उसे ब्रह्म कहते हैं। ऐतरयोपनिषद् में आता है कि ईश्वर ने जीवों की रचना के बाद मूर्धाद्वार से जीवों के शरीर में प्रवेश किया। (1/3/11)

भगवान कृष्ण गीता में भी कहते हैं कि वे सभी प्राणियों में विद्यमान रहते हैं (10/31)। इससे स्पष्ट होता है कि भगवान सर्वत्र व्याप्त हैं। कोई भी ऐसा स्थान नहीं है, जहाँ भगवान विद्यमान न हों। यह सकल जगत उनके कारण ही क्रियाशील है। मनुष्य परमात्मा के अभाव में कोई भी क्रिया करने में असमर्थ है। जीवधारियों में आत्मा के रूप में जो तत्व विद्यमान है, उसका सीधा सम्बन्ध ब्रह्म से जुड़ा रहता है। ईश्वरांश के निकलते ही शरीर की इन्द्रियाँ निष्क्रिय हो जाती हैं। यदि आत्मतत्व से भगवत्तत्व भिन्न होता तो आत्मा द्वारा शरीर का त्याग कर दिये जाने पर भी भगवत तत्व की पृथक् शक्ति से शरीर क्रियाशील बना रहता है। किंतु ऐसा न होने से आत्मतत्व व भगवतत्व के पारस्परिक सम्बन्धों की पुष्टि होती है। ऐतरयोपनिषद्–(1/2/4) में ही आता है कि पुरूष–शरीर में क्रियाशीलता लाने के लिये ब्रह्म ने अग्नि, वायु, सूर्य, दिक्पतियों, चन्द्रमा तथा जल आदि देवताओं को उसमें प्रवेश करने का आदेश दिया। कहने का तात्पर्य यह है कि इन देवताओं की शक्ति पाकर मानव–शरीर की इन्द्रियां क्रिया करने में सक्षम होती हैं। फिर भी पूर्ण क्रियाशील होने के लिये शरीर को आत्मतत्व के रूप में भगवतत्व के अंश की आवश्यकता होती है। इससे इस सिद्धान्त की पुष्टि होती है कि सृष्टि के विकास के साथ–साथ भगवतत्व भी व्यापक होता जाता है।

जगत–उत्पत्ति के कारणों पर चिन्तन–मनन करने से भी तीन तत्वों का पता चलता है। ये हैं–प्रकृति, काल और ईश्वर। इनमें भी भगवान की प्रधानता स्पष्ट है। जगत के स्वरूप का अध्ययन करने से सृष्टि प्राकृतिक पंचभूतों का पुंज दिखायी देती है। वस्तुतः कोई भी ऐसा पिण्ड नहीं है, जिसकी रचना में अग्नि, वायु, आकाश, जल और पृथ्वी का संयोग न हुआ हो। किंतु मात्र पंचतत्वों के संयोग से विभिन्न रूपों की रचना होना तथा उनमें चेतना का संचार होना सम्भव नहीं है। लोक में कलाकार अनेक सुन्दर मूर्तियों की रचना करने के पश्चात् भी उनमें चेतना का संचार नहीं कर पाते हैं। प्रकृतिवादी विज्ञान इस बात का उत्तर देने में असमर्थ है कि पंचभूतों द्वारा निर्मित शरीर में किस प्रकार

चेतनता आती है। पर ईश्वरवादी विद्वान् इसका उत्तर देने में समर्थ हैं कि इसके लिये स्वयं ब्रह्म शरीर में कैसे प्रवेश करता है। इस प्रकार प्रकृति अथवा पंचतत्वों का संयोग तब तक कोई सजीव या निर्जीव रचना करने में सक्षम नहीं है, जब तक उन्हें किसी अलौकिक सत्ता द्वारा शक्ति नहीं प्राप्त होती है। यही अलौकिक सत्ता प्रकृति में भी भगवतत्व के रूप में क्रियाशील रहती है।

कालतत्व के बारे में विचार करने पर यह पता चलता है कि यह जगत समय द्वारा नियन्त्रित है। सभी सजीव, निर्जीव तथा वृक्षों आदि के उत्पत्ति, स्थिति और विनाश का जो क्रम देखने में आता है वह जगत के कालबद्ध सिद्ध करने में प्रमुख भूमिका निभाता है। लोकदृष्ट प्रमाणों से यह प्रमाणित होता है कि जीवों की उत्पत्ति किसी काल–विशेष के लिये होती है और समय पूर्ण हो जाने पर उनकी मृत्यु हो जाती है। वृक्ष और पौधों की भी समय पूरा हो जाने पर मृत्यु हो जाती है, जैसा कि पूर्व में कहा जा चुका है। सृष्टि का नियम भी यही है। ऋग्वेद में आया है कि पूर्वकाल में अनेक सृष्टियाँ बीत चुकीं (वही 10/190/3)। इससे कालतत्व के स्वतन्त्र अस्तित्व होने की पुष्टि होती है। यहाँ प्रश्न उठता है कि क्या काल जगत–उत्पत्ति का हेतु होने में सक्षम है? कालवादियों की दृष्टि में वह ऐसा शक्तिमान् ही माना गया है। उसे शक्ति दूसरे से नहीं प्राप्त करनी पड़ती। सृष्टि और जीवों का जीवन–काल निर्धारित करने की शक्ति काल में ही है। गतिमान रहना भी काल का गुण है, जिसमें परिवर्तन भी सम्मिलित है। जन्म–मृत्यु और रचना–विनाश काल के उक्त गुण के कारण ही होते हैं। इन गुणों के आधार पर काल सर्वशक्तिमान् तत्व कहा जाता है। अन्य मत में काल को गति और शक्ति जिस तत्व से ग्रहण करनी पड़ती है, उसे ईश्वर कहते हैं। यही ईश्वर तत्व प्रकृति और काल का ईश्वर अर्थात् शासक होता है।

जगत–उत्पत्ति का हेतु वही तत्व हो सकता है, जिसमें पूर्ण तत्व हो। पूर्णतत्व का विवेचन करते हुए बृहदारण्यकोपनिषद् में कहा गया– 'परमात्मा' पूर्ण है, यह जगत भी पूर्ण है, उसी पूर्ण परमात्मा से यह जगत उत्पन्न हुआ है, पूर्ण में से पूर्ण निकाल देने पर परमात्मा पूर्ण ही बच रहता है। पुरूष शब्द भी पूर्णता का वाचक है। इसीलिये वंशजों की उत्पत्ति का हेतु पुरूष माना जाता है। पुरूष में पूर्णता ईश्वर की विद्यमानता से आती है। सृष्टि–रचना में ईश्वर नाम चेतन–तत्व ने अपने गुणों को भरसक प्रकट करने का प्रयास किया है। उसने जीवों को इस योग्यता से युक्त रखा है कि वे अपने वंशजों की उत्पत्ति तथा पालन कर सकें। मनुष्य में तो ईश्वर ने वह गुण दिया है जिससे वह ब्रह्म के अति निकट पहुँच सकता है। मनुष्य–योनि को देखकर हमें भगवतत्व का सहज ही बोध हो जाता है।

यद्यपि सभी जीवों में भगवतत्व की विद्यमानता है, तथापि मनुष्य में वह तिर्यगादि से अधिक रूप में विद्यमान रहता है। तभी तो मनुष्य ईश्वर की जानकारी तथा जगत–उत्पत्ति के कारणों की मीमांसा करने में अधिक सक्षम है। इससे यह स्पष्ट है कि मनुष्य से भिन्न योनि के जीव चेतन होने पर भी पूर्ण नहीं है। पुरूष अर्थात् मनुष्य में पूर्णता के सभी लक्षण दिखायी देते हैं। पुरूष और भगवतत्व की पूर्णता में यह अन्तर है कि मनुष्य ब्रह्म और उसके गुणों की जानकारी प्राप्त कर सकने तक ही पूर्ण है। मनुष्य में सृष्टि रचना और संहार करने की पूर्णता नहीं है। इस दृष्टि से विचार करने पर मनुष्य और भगवतत्व की पूर्णता का अन्तर स्पष्ट हो जाता है। इससे जगत–उत्पत्ति का हेतु भगवतत्व ही सिद्ध है। इस प्रकार परम शक्ति के तीन रूप सामने आते है, यथा– ब्रह्म, ईश्वर एवं भगवान! ब्रह्म चराचर जगत

का धाता और विधाता है। नाम–रूपादि से रहित होने से ब्रह्म केवल अनुभूति का विषय है। इसे तप, योग और साधन से जाना जा सकता है। ब्रह्म को प्राप्त करने का एकमात्र साधन ज्ञान है।

ब्रह्म तटस्थता का वाचक है। ईश्वर जगत की उत्पत्ति, स्थिति और विनाश के लिये क्रियाशील रहता है। इसे उपासना द्वारा प्राप्त किया जा सकता है। यह उपासना का विषय इसलिये बन जाता है कि ईश्वर के गुणों और रूपों का वर्णन सम्भव है। जगत के शासक के रूप में ईश्वर मनुष्यों की पहुँच के अंदर होता है। मनुष्यों के कर्मों का साक्षी ईश्वर ही है। वह मनुष्यों के शुभाशुभ कर्मों का निर्णय भी करता है और मृत्योपरान्त पुनर्जन्म के लिये योनियों का निर्धारण भी करता है। पूजन–अर्चन करते समय त्रिशक्ति का ही आह्वान किया जाता है। मन्दिरों की मूर्तियों में भगवान के रूप की ही प्रतिष्ठा की जाती है। स्वरूपवान् होने से आधुनिक काल में भगवान रूप ही अधिक व्यापक हो गया है। भगवान को प्राप्त करने के लिये श्रद्धा और भक्ति का मार्ग अपनाया जा सकता है। भक्ति द्वारा भगवान की प्राप्ति का मार्ग सरल होने से वह अल्पज्ञों द्वारा भी ग्राह्य है। इस प्रकार यह भगवान के निर्गुणरूप का वर्णन हुआ। धर्म की रक्षा एवं भक्तों की इच्छा–पूर्ति के लिये वे ही पुनः राम, कृष्णादि अवतारों में भी आकर अनेक लीलाएँ करते हैं।

●●●

स्थिरता निर्विकल्प समाधि है तथा एकाग्रता सविकल्प समाधी है। सविकल्प का तात्पर्य है कि उस अवधि में आवश्यक विचारों का मनःक्षेत्र में अपना काम करते रहना। मन की स्थिरता सर्वथा भिन्न बात है। उसे एकाग्रता से मिलती–जुलती स्थिति तो कहा जा सकता है; किन्तु दोनों का सीधा सम्बन्ध नहीं है। जिसका मन स्थिर हो उसे एकाग्रता का लाभ मिल सके अथवा जिसे एकाग्रता सिद्ध है उसे स्थिरता प्राप्त हो जाये – यह आवश्यक नहीं।

जिव जबतें हरि बिलगान्यो

जिव जबतें हरितें बिलगान्यो । तबतें देह गेह निज जान्यो ।
मायावस स्वरूप बिसरायो । तेहि भ्रमतें दारुन दुःख पायो ।

पायो जो दारुन दुसह दुःख, सुख-लेस सपनेहुँ नहिं मिल्यो ।
भव-सूल, सोक अनेक जेहि, तेहि पंथ तू हठि हठि चल्यो ।।

बहु जोनि जनम, जरा, विपति, मतिमन्द ! हरि जान्यो नहीं ।
श्रीराम बिनु विश्राम मूढ़ ! विचारु लखि पायो कहीं ।।

अर्थात्

हे जीव ! जब से तू भगवान से अलग हुआ, तभी से तूने शरीर को अपना घर मान लिया। माया के वश होकर तूने अपने 'सच्चिदानन्द स्वरूप को भुला दिया, और इसी भ्रम के कारण तुझे दुःख भोगने पड़े। तुझे बड़े ही कठिन (जन्म-मरण रूपी) असहनीय दुःख मिले। सुख का तो स्वप्न में भी लेश नहीं रहा। जिस मार्ग में अनेक संसारी कष्ट और शोक भरे पड़े हैं, तू उसी पर हठ-पूर्वक बार-बार चलता रहा । अनेक योनियों में भटका, बूढ़ा हुआ, विपत्तियाँ सहीं। (मर गया)। पर, अरे मूर्ख ! तूने इतने पर भी श्री हरि को नहीं पहचाना। अरे मूढ़ ! विचार कर देख, श्रीराम जी को छोड़कर (किसी ने) क्या कहीं शान्ति प्राप्त की है।

– (विनय - पत्रिका से)

SIDDHYOG Postal Regd. No.: Ag. 19/15-17 JANUARY 2017

प्रेषण कार्यालय :

सिद्धयोग
योग सिद्धान्तों का प्रतिपादक
उच्चकोटि का हिन्दी मासिक

श्री सिद्धगुफा योग प्रशिक्षण केन्द्र
सँवाई (एत्मादपुर) आगरा (उ.प्र.)

PRINTED MATTER BOOK-POST

श्री/सुश्री _____

_____

_____

□□□□□□

महिमा भगवान की !

देवस्य पश्य काव्यं न ममार न जीर्यति।

अथर्व. 10, 8, 32

अर्थात्

यह भगवान की महिमा है कि वह न बूढ़ा होता है, न मरता है, केवल वही एक रस रहता है। शेष सब मृत्यु द्वारा ग्रसे जाते हैं।

संस्थापक :- योगयोगेश्वर अनन्तश्री चन्द्रमोहन जी महाराज। मुद्रक एवं प्रकाशक डॉ. दयालदास शर्मा के लिए राष्ट्रीय कॉलेज एवं प्रिंटिंग वर्क्स, आगरा-3 से मुद्रित एवं श्री योग प्रशिक्षण केन्द्र, सवाँई (एत्मादपुर) आगरा से प्रकाशित। आर.एन.आई. नं. UPHIN/2004/14566
सम्पादक : आचार्य श्री (डॉ.) दयालदास शर्मा